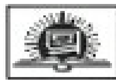
हिंद स्वराज

महात्मा गांधी

हिंद स्वराज

महात्मा गांधी


प्रभात प्रकाशन, दिल्ली™
ISO 9001:2008 प्रकाशक



अनुक्रमणिका



दो शब्द

लंदन से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए गांधीजी ने रास्ते में जो संवाद लिखा और 'हिंद स्वराज' के नाम से छपाया, उसे आज पचास बरस हो गए।

दक्षिण अफ्रीका के भारतीय लोगों के अधिकारों की रक्षा के लिए सतत लड़ते हुए गांधीजी १९०९ में लंदन गए थे। वहाँ कई क्रांतिकारी स्वराज–प्रेमी भारतीय नवयुवक उन्हें मिले। उनसे गांधीजी की जो बातचीत हुई, उसी का सार गांधीजी ने एक काल्पनिक संवाद में ग्रंथित किया है। इस संवाद में गांधीजी के उस समय के महत्त्व के सब विचार आ जाते हैं। किताब के बारे में गांधीजी ने स्वयं कहा है—"मेरी यह छोटी सी किताब इतनी निर्दोष है कि बच्चों के हाथ में भी यह दी जा सकती है। यह किताब द्वेष–धर्म की जगह प्रेम–धर्म सिखाती है; हिंसा की जगह आत्म–बलिदान को स्थापित करती है; और पशुबल के खिलाफ टक्कर लेने के लिए आत्मबल को खड़ा करती है।" गांधीजी इस निर्णय पर पहुँचे थे कि पश्चिम के देशों में, यूरोप–अमेरिका में जो आधुनिक सभ्यता जोर कर रही है, वह कल्याणकारी नहीं है, मनुष्य–हित के लिए वह सत्यानाशकारी है। गांधीजी मानते थे कि भारत और सारी दुनिया में प्राचीन काल से जो धर्मपरायण नीति–प्रधान सभ्यता चली आई है, वह सच्ची सभ्यता है।

गांधीजी का कहना था कि भारत से केवल अंग्रेजों को और उनके राज्य को हटाने से भारत को अपनी सच्ची सभ्यता का स्वराज नहीं मिलेगा। हम अंग्रेजों को हटा दें और उन्हीं की सभ्यता का और उन्हीं के आदर्शों को स्वीकार करें तो हमारा उद्धार नहीं होगा। हमें अपनी आत्मा को बचाना चाहिए। भारत के लिखे–पढ़े चंद लोग पश्चिम के मोह में फँस गए हैं। जो लोग पश्चिम के असर तले नहीं आए हैं, वे भारत की धर्म–परायण नैतिक सभ्यता को ही मानते हैं। उनको अगर आत्मशक्ति का उपयोग करने का तरीका सिखाया जाए, सत्याग्रह का रास्ता बताया जाए, तो वे पश्चिमी राज्य–पद्धति का और उससे होनेवाले अन्याय का मुकाबला कर सकेंगे एवं शस्त्रबल के बिना भारत को स्वतंत्र करा के दुनिया को भी बचा सकेंगे।

पश्चिम का शिक्षण और पश्चिम का विज्ञान अंग्रेजों के अधिकार के जोर पर हमारे देश में

आए। उनकी रेलें, उनकी चिकित्सा और रुग्णालय, उनके न्यायालय और उनकी न्यायदान–पद्धति आदि सब बातें अच्छी संस्कृति के लिए आवश्यक नहीं हैं, बल्कि विघातक ही हैं वगैरह बातें बिना किसी संकोच के गांधीजी ने इस किताब में दी हैं।

मूल किताब गुजराती में लिखी गई थी। उसके हिंदुस्तान आते ही बंबई सरकार ने आक्षेपार्ह बताकर उसे जब्त किया। तब गांधीजी ने सोचा कि 'हिंद स्वराज' में मैंने जो कुछ भी लिखा है, वह जैसा–का–तैसा अपने अंग्रेजी जाननेवाले मित्रों और टीकाकारों के सामने रखना चाहिए। उन्होंने स्वयं गुजराती 'हिंद स्वराज' का अंग्रेजी अनुवाद किया और उसे छपाया। उसे भी बंबई सरकार ने आक्षेपार्ह घोषित किया।

दक्षिण अफ्रीका का अपना सारा काम पूरा करके सन् १९१५ में गांधीजी भारत आए। उसके बाद सत्याग्रह करने का जब पहला मौका गांधीजी को मिला, तब उन्होंने बंबई सरकार के हुक्म के खिलाफ 'हिंद स्वराज' फिर से छपवाकर प्रकाशित की। बंबई सरकार ने इसका विरोध नहीं किया। तब से यह किताब बंबई सरकार के राज्य में, सारे भारत में और दुनिया के गंभीर विचारकों के बीच ध्यान से पढ़ी जाती है।

स्व. गोखलेजी ने इस किताब के विवेचन को कच्चा कहकर इसे नापसंद किया था और आशा की थी कि भारत लौटने के बाद गांधीजी स्वयं इस किताब को रदद् कर देंगे। लेकिन वैसा नहीं हुआ। गांधीजी ने एकाध सुधार करके कहा कि आज मैं इस किताब को अगर फिर से लिखता, तो उसकी भाषा में जरूर कुछ सुधार करता। लेकिन मेरे मूलभूत विचार वही हैं, जो इस किताब में मैंने व्यक्त किए हैं।

गांधीजी के प्रति आदर और उनके विचारों के प्रति सहानुभूति रखनेवाले दुनिया के बड़े–बड़े विचारकों ने 'हिंद स्वराज' के बारे में जो सम्मति प्रकट की है, उसका सार श्री महादेव देसाई ने नई आवृत्ति की अपनी सुंदर प्रस्तावना में दिया ही है।

अहिंसा का सामर्थ्य, यंत्रवाद का गांधीजी का विरोध और पश्चिमी सभ्यता तीनों के बारे में तथा सत्याग्रह की अंतिम भूमिका के बारे में भी पश्चिम के लोगों ने अपना मतभेद स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है।

गांधीजी के सारे जीवन–कार्य के मूल में जो श्रद्धा काम करती रही, वह सारी 'हिंद स्वराज' में पाई जाती है। इसलिए गांधीजी के विचार–सागर में इस छोटी सी पुस्तक का महत्त्व असाधारण है।

गांधीजी के बताए हुए अहिंसक रास्ते पर चलकर भारत स्वतंत्र हुआ। असहयोग, कानूनों का सविनय भंग और सत्याग्रह—इन तीनों कदमों की मदद से गांधीजी ने स्वराज का रास्ता तय किया। हम इसे चमत्कारपूर्ण घटना का त्रिविक्रम कह सकते हैं।

गांधीजी के प्रयत्न का वही हाल हुआ, जो दुनिया की अन्य श्रेष्ठ विभूतियों के प्रयत्नों का होता आया है।

भारत ने, भारत के नेताओं ने और एक ढंग से सोचा जाए तो भारत की जनता ने भी गांधीजी के द्वारा मिले हुए स्वराज–रूपी फल को तो अपनाया, लेकिन उनकी जीवन–दृष्टि को पूरी तरह नहीं अपनाया है। धर्मपरायण, नीति–प्रधान पुरानी संस्कृति की प्रतिष्ठा जिसमें नहीं है, ऐसी ही शिक्षा–पद्धति भारत में आज प्रतिष्ठित है। न्यायदान पश्चिमी ढंग से ही हो रहा है। इसकी तालीम भी जैसी अंग्रेजों के दिनों में थी, वैसी ही आज है। अध्यापक, वकील, डॉक्टर, इंजीनियर और राजनीतिक नेता—ये पाँच मिलकर भारत के सार्वजनिक जीवन को पश्चिमी ढंग से चला रहे हैं। अगर पश्चिम के विज्ञान और यांत्रिक कौशल्य (Technology) का सहारा हम न लें और गांधीजी के ही सांस्कृतिक आदर्श को स्वीकार करें, तो भारत जैसा महान् देश सऊदी अरेबिया जैसे नगण्य देश की कोटि तक पहुँच जाएगा, यह डर भारत के आज के सभी पक्ष के नेताओं को है।

भारत शांतिवादी है, युद्ध–विरोधी है। दुनिया का साम्राज्यवाद, उप–निवेशवाद, शोषणवाद, राष्ट्र–राष्ट्र के बीच फैला हुआ ऊँच–नीच भाव इन सबका विरोध करने का कंकण भारत सरकार ने अपने हाथ में बाँधा है। तो भी जिस तरह के आदर्श का गांधीजी ने अपनी किताब ‘हिंद स्वराज’ में पुरस्कार किया है, उसका तो उसने अस्वीकार ही किया है। स्वाभाविक है कि इस तरह के नए भारत में अंग्रेजी भाषा का ही बोलबाला रहे। सिर्फ अमेरिका ही नहीं, रशिया, जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया, जापान आदि विज्ञान–परायण राष्ट्रों की मदद से भारत यंत्र–संस्कृति में जोरों से आगे बढ़ रहा है और उसकी आंतरिक निष्ठा मानती है कि यही सच्चा मार्ग है। पू. गांधीजी के विचार जैसे हैं, वैसे नहीं चल सकते।

यह नई निष्ठा केवल नेहरूजी की नहीं, किंतु करीब–करीब सारे राष्ट्र की है। श्री विनोबा भावे गांधीजी के आत्मवाद का, सर्वोदय का और अहिंसक शोषण–विहीन समाज–रचना का जोरों से पुरस्कार कर रहे हैं। ग्राम–राज्य की स्थापना से, शांति सेना के द्वारा, नई तालीम के जरिए, स्त्री–जाति की जागृति के द्वारा वे मानस–परिवर्तन, जीवन–परिवर्तन और समाज–परिवर्तन का पुरस्कार कर रहे हैं। भू–दान और ग्राम–दान के द्वारा सामाजिक जीवन में आमूलाग्र क्रांति करने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन उन्होंने भी देख लिया है कि पश्चिम के विज्ञान और यंत्र–कौशल्य के बिना सर्वोदय अधूरा ही रहेगा।

जब अमेरिका का प्रजा–सत्तावाद, रशिया और चीन का साम्यवाद, दूसरे और देशों का तथा भारत का समाज–सत्तावाद एवं गांधीजी का सर्वोदय दुनिया के सामने स्वयंवर के लिए खड़े हैं, ऐसे अवसर पर गांधीजी की इस युगांतरकारी छोटी सी किताब का अध्ययन जोरों से होना चाहिए। गांधीजी स्वयं भी नहीं चाहते थे कि शब्द–प्रमाण की दुहाई देकर हम उनकी बातें जैसी–की–वैसी ग्रहण करें।

‘हिंद स्वराज’ की प्रस्तावना में गांधीजी ने स्वयं लिखा है कि व्यक्तिश: उनका सारा प्रयत्न ‘हिंद स्वराज’ में बताए हुए आध्यात्मिक स्वराज की स्थापना करने के लिए ही है। लेकिन उन्होंने भारत में अनेक साथियों की मदद से स्वराज का आंदोलन चलाया, कांग्रेस के जैसी राजनीतिक राष्ट्रीय संस्था का मार्गदर्शन किया, वह उनकी प्रवृत्ति पार्लियामेंटरी स्वराज्य (Parliamentary Swarajya) के लिए ही थी।

स्वराज के लिए अन्याय का, शोषण का और परदेशी सरकार का विरोध करने में अहिंसा का सहारा लिया जाए, इतना एक ही आग्रह उन्होंने रखा है। इसलिए भारत की स्वराज–प्रवृत्ति का अर्थ उनकी इस वामनमूर्ति पुस्तक 'हिंद स्वराज' से न किया जाए।

गांधीजी की यह चेतावनी कांग्रेस के स्वराज–आंदोलन का विपर्यास करनेवालों के लिए थी। आज जो लोग भारत का स्वराज चला रहे हैं, उनके बचाव में भी यह सूचना काम आ सकती है। भारत के राष्ट्रीय विकास का दिन–रात चिंतन करनेवाले चिंतक और नेता भी कह सकते हैं कि हमारे सिर पर 'हिंद स्वराज' के आदर्श का बोझा गांधीजी ने नहीं रखा था।

लेकिन अगर गांधीजी की बात सही है और भारत का तथा दुनिया का भला 'हिंद स्वराज' में प्रतिबिंबित सांस्कृतिक आदर्श से ही होनेवाला है, तो इसके चिंतन का, नव–ग्रंथन का और आचरण का भार किसी के सिर पर तो होना ही चाहिए।

मैंने एक दफे गांधीजी से कहा था—"आपने अपनी स्वराज–सेवा के प्रारंभ में 'हिंद स्वराज' नामक जो पुस्तक लिखी, उसमें आपके मौलिक विचार हैं, तो भी शंका होती है कि वे रस्किन, थोरो, एडवर्ड कारपेंटर, टेलर, मैक्स नार्डू आदि लोगों के चिंतन से प्रभावित हैं। इन लोगों ने आधुनिक सभ्यता के दोष दिखाए हैं। विश्व–बंधुत्व की बुनियाद पर स्थापित पुरानी सभ्यता का इन लोगों ने पुरस्कार किया, इसलिए आपका 'हिंद स्वराज' पढ़ने से यही खयाल होता है कि आप भूतकाल को फिर से जाग्रत् करने के पक्ष में हैं। आपको बार–बार कहना पड़ता है कि आप भूतकाल के उपासक नहीं हैं। मानव–जाति ने गलत रास्ते जितनी प्रगति की, उतना रास्ता पीछे चलकर सच्चे रास्ते पर लगने के बाद आप फिर नीतिनिष्ठ, आत्मनिष्ठ रास्ते से नई ही प्रगति करना चाहते हैं, तो आपका जीवन–कार्य करीब–करीब समाप्त होने को आया है। भारत का स्वराज स्थापित होने की तैयारी है। ऐसे समय पर आप फिर से अपने जीवन भर के अनुभव और चिंतन की बुनियाद पर ऐसी एक नई किताब क्यों नहीं लिखते, जिसमें भविष्य की एक हजार साल की महामानव संस्कृति का बीज दुनिया को मिले?" वे अपने कार्य में इतने व्यस्त थे और बिगड़ता हुआ मामला सुधारने की प्राणपण से चेष्टा करने के लिए इतने चिंतित थे कि मेरी सूचना या प्रार्थना सुनने की भी उनकी तैयारी नहीं थी।

अब जब गांधीजी का दुनियावी जीवन पूरा हो चुका है और उनके लेखों का, भाषणों का, पत्रों का और मुलाकातों का अशेष संग्रह तैयार हो रहा है, तब आदर्श–संस्कृति के बारे में और उसे स्थापित करने के बारे में गांधीजी के विचार इकट्ठा करके ऐसा एक प्रभावशाली चित्र किसी अधिकारी व्यक्ति को तैयार करना चाहिए, जिसे हम 'हिंद स्वराज' की परिणत आवृत्ति नहीं कहेंगे; उसे तो स्वराज–भोगी भारत का विश्वकार्य या ऐसा ही कुछ कहना होगा।

जो हो, ऐसी एक किताब की बहुत ही जरूरत है।

इसके माने यह नहीं कि वह किताब इस 'हिंद स्वराज' का स्थान ले सकेगी। इस किताब का स्थान तो भारतीय जीवन में हमेशा के लिए रहेगा ही।

१ अगस्त, १९५९

—काका कालेलकर



नई आवृत्ति की प्रस्तावना

[‘हिंद स्वराज’ की यह जो नई आवृत्ति प्रकाशित होती है, उसके दीबाचे के तौर पर ‘आर्यन पाथ’ मासिक के ‘हिंद स्वराज अंक’ की जो समालोचना मैंने ‘हरिजन’ में अंग्रेजी में लिखी थी, उसका तरजुमा देना यहाँ नामुनासिब नहीं होगा। यह सही है कि ‘हिंद स्वराज’ की पहली आवृत्ति में गांधीजी के जो विचार दिखाए गए हैं, उनमें कोई फेरबदल नहीं हुआ है। लेकिन उनका उत्तरोत्तर[1] विकास[2] तो हुआ ही है। मेरे नीचे दिए हुए लेख में उस विकास के बारे में कुछ चर्चा की गई है। उम्मीद है कि उससे गांधीजी के विचारों को ज्यादा साफ समझने में मदद होगी।—म.ह.दे.]

महत्त्व का प्रकाशन

‘आर्यन पाथ’ मासिक ने अभी–अभी ‘हिंद स्वराज अंक’ प्रकाशित किया है। जिस तरह ऐसा अंक[3] निकालने का विचार अनोखा है, उसी तरह उसका रूप–रंग भी बढ़िया है। इसका प्रकाशन श्रीमती सोफिया वाड़िया के भक्तिभाव भरे श्रम का आभारी है। उन्होंने ‘हिंद स्वराज’ की नकलें परदेश में अपने अनेक मित्रों को भेजी थीं और उनमें जो मुख्य थे, उन्हें उस पुस्तक के बारे में अपने विचार लिख भेजने के लिए कहा था। खुद श्रीमती वाड़िया ने तो उस पुस्तक के बारे में लेख लिखे ही थे और ये विचार जाहिर किए थे कि उसमें भारतवर्ष के उजले भविष्य की आशा रही है। लेकिन उस पुस्तक में यूरोप की अंधाधुंधी को भी मिटाने की शक्ति है, ऐसा यूरोप के विचारकों और लेखक–लेखिकाओं से उन्हें कहलाना था। इसलिए उन्होंने यह योजना[4] निकाली। उसका नतीजा अच्छा आया है। इस खास अंक में अध्यापक सॉडी, कोल, डिलाइल बर्न्स, मिडलटन मरी, बेरेसफर्ड, ह्यू फॉसेट, क्लॉड हूटन, जिराल्ड हर्ड, कुमारी रैथबोन वगैरह अनेक नामी लेखक–लेखिकाओं के लेख छपे हैं। उनमें से कुछ तो शांतिवादी और समाजवादी के तौर पर मशहूर हैं। लेकिन जिनके विचार शांतिवाद और समाजवाद के खिलाफ हैं, ऐसे लोगों के लेख भी इस अंक में आए होते तो अंक कैसा होता! जो लेख दिए गए हैं, उनकी व्यवस्था इस तरह की गई है कि ‘शुरू के लेखों में जो आलोचनाएँ और उज्र आए हैं, उनमें से बहुतों के जवाब बाद के लेखों में आ जाते हैं।’ लेकिन दो–एक टीकाएँ लगभग सब लेखकों ने की हैं, इसलिए पहले उनका विचार करना

ठीक होगा। कुछ बातें ऐसी कहीं गई हैं, जिन्हें तुरंत स्वीकार कर लेना चाहिए। अध्यापक सॉडी ने लिखा है कि वे हाल में ही हिंदुस्तान आए थे और यहाँ उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं देखा, जिसे ऊपर–ऊपर से देखने पर ऐसा लगे कि 'हिंद स्वराज' में बताए हुए सिद्धांतों[5] को कुछ ज्यादा सफलता मिली है। यह बिलकुल सच बात है। ऐसी ही सही बात मि. कोल ने कही है कि गांधीजी की 'सिर्फ अकेले की बात सोचनी हो तो वे ऐसे स्वराज के नजदीक इनसान जितना पहुँच सकता है उतना पहुँच ही चुके हैं। लेकिन उसके अलावा एक और सवाल रहता है, वह यह कि इनसान–इनसान के बीच जो खाई है, खुद अकेले अमुक आचरण करना और दूसरों को उनकी बुद्धि के मुताबिक आचरण करने में मदद करना—इन दोनों के बीच जो अंतर है, उसे कैसे पाटा जाए? इस दूसरी चीज के लिए तो औरों के साथ रहकर, उनमें से एक बनकर, उनके साथ तादात्म्य–एकता साधकर मनुष्य को आचरण करना पड़ता है; एक ही समय में अपना असली रूप और दूसरे का धारण किया हुआ रूप यानी व्यक्तित्व (जिसे खुद जाँच सके, जिसकी टीका–टिप्पणी कर सके और जिसकी कीमत आँक सके), ऐसे दो तरह के बरताव रखने पड़ते हैं। गांधीजी ने अपने आचरण की साधना को आखिरी हद तक पहुँचाया जरूर है, लेकिन इस दूसरे सवाल को, खुद को संतोष हो इस तरह, वे हल नहीं कर पाए हैं।' फिर जॉन मिडलटन मरी कहते हैं वह भी सही है कि 'अहिंसा को अगर सिर्फ राजनीतिक[6] दबाव के एक साधन के तौर पर इस्तेमाल किया जाए, तो उसकी शक्ति जल्दी खत्म होती है।' और फिर सवाल यह उठता है कि 'ऐसी अहिंसा को क्या सच्ची अहिंसा कहा जा सकता है?'

लेकिन यह सारी क्रिया लगातार विकास की क्रिया है। उस साध्य[7] की सिद्धि के लिए कोशिश करते–करते मनुष्य साधन[8] की संपूर्णता के लिए भी कोशिश करता रहता है। सैकड़ों बरस पहले बुद्ध और ईसा मसीह ने अहिंसा व प्रेम के सिद्धांत का उपदेश किया था। इन सैकड़ों बरसों में इक्के–दुक्के व्यक्तियों ने छोटे–छोटे और सीमित[9] प्रश्नों में उसका प्रयोग किया है। गांधीजी के बारे में एक बात स्वीकार हो चुकी है, जिसका जिक्र करते हुए इस लेख–संग्रह[10] में जिराल्ड हर्ड ने कहा है कि 'गांधीजी के प्रयोग में सारे जगत् को दिलचस्पी है और उसका महत्त्व[11] युगों तक कायम रहेगा। इसका कारण यह है कि उन्होंने समूह को लेकर या राष्ट्रीय पैमाने पर उसका प्रयोग करने की कोशिश की है।' उस प्रयोग की कठिनाइयाँ तो साफ हैं, लेकिन गांधीजी को भरोसा है कि इन मुसीबतों को पार करना नामुमकिन नहीं है। हिंदुस्तान में १९२१ में वह प्रयोग नामुमकिन मालूम हुआ और उसे छोड़ देना पड़ा। लेकिन जो बात उस समय नामुमकिन थी, वह १९३० में मुमकिन हुई। अब भी बहुत बार यह सवाल उठता है कि 'अहिंसक साधन का अर्थ क्या है?' उस शब्द का सबको मंजूर हो ऐसा अर्थ और उसकी मर्यादा[12] तय करने तथा उसे चालू करने से पहले अहिंसा का लंबे अरसे तक प्रयोग और आचरण[13] करने की जरूरत है। पश्चिम के विचारक अकसर भूल जाते हैं कि अहिंसा के आचरण में सबसे जरूरी और न टाली जा सकनेवाली चीज प्रेम है; और शुद्ध निःस्वार्थ प्रेम मन की और शरीर की बेदाग–निष्कलंक शुद्धि के बिना संभव नहीं है तथा प्राप्त नहीं किया जा सकता।

‘हिंद स्वराज’ की प्रशंसा भरी समालोचना में सब लेखकों ने एक बात का जिक्र किया है : वह है गांधीजी का यंत्रों के बारे में विरोध।

समालोचक इस विरोध को नामुनासिब और अकारण[14] मानते हैं। मिडलटन मरी कहते हैं : ‘गांधीजी अपने विचारों के जोश में यह भूल जाते हैं कि जो चरखा उन्हें बहुत प्यारा है, वह भी एक यंत्र ही है और कुदरत की नहीं, लेकिन इनसान की बनाई हुई एक अकुदरती–कृत्रिम चीज है। उनके उसूल के मुताबिक तो उसका भी नाश करना होगा।’ डिलाइल बर्न्स कहते हैं: ‘यह तो बुनियादी विचार–दोष है। उसमें छिपे रूप से यह बात सूचित की गई है कि जिस किसी चीज का बुरा उपयोग हो सकता है, उसे हमें नैतिक दृष्टि से हीन मानना चाहिए। लेकिन चरखा भी तो एक यंत्र ही है और नाक पर लगाया हुआ चश्मा भी आँख की मदद करने को लगाया हुआ यंत्र ही है। हल भी यंत्र है और पानी खींचने के पुराने–से–पुराने यंत्र भी शायद मानव–जीवन को सुधारने की मनुष्य की हजारों बरस की लगातार कोशिश के आखिरी फल होंगे। किसी भी यंत्र का बुरा उपयोग होने की संभावना रहती है। लेकिन अगर ऐसा हो तो उसमें रही हुई नैतिक हीनता यंत्र की नहीं, लेकिन उसका उपयोग करनेवाले मनुष्य की है।’

मुझे इतना तो कबूल करना चाहिए कि गांधीजी ने ‘अपने विचारों के जोश में’ यंत्रों के बारे में अनगढ़ भाषा इस्तेमाल की है और आज अगर वे इस पुस्तक को फिर से सुधारने बैठें तो उस भाषा को वे खुद बदल देंगे। क्योंकि मुझे यकीन है कि मैंने ऊपर समालोचकों के जो कथन दिए हैं, उनको गांधीजी स्वीकार करेंगे; और जो नैतिक गुण यंत्र का इस्तेमाल करनेवाले में रहे हैं, उन गुणों को उन्होंने यंत्र के गुण कभी नहीं माना। उदाहरण के तौर पर १९२४ में उन्होंने जो भाषा इस्तेमाल की थी, वह ऊपर दिए हुए दो कथनों की याद दिलाती है। उस साल दिल्ली में गांधीजी का एक भाई के साथ जो संवाद[15] हुआ था, वह मैं नीचे देता हूँ :

‘क्या आप तमाम यंत्रों के खिलाफ हैं?’ रामचंद्रन ने सरल भाव से पूछा।

गांधीजी ने मुसकराते हुए कहा, ‘वैसा मैं कैसे हो सकता हूँ, जब मैं जानता हूँ कि यह शरीर भी एक बहुत नाजुक यंत्र ही है? खुद चरखा भी एक यंत्र ही है, छोटी दाँत–कुरेदनी[16] भी यंत्र है। मेरा विरोध यंत्रों के लिए नहीं है, बल्कि यंत्रों के पीछे जो पागलपन चल रहा है, उसके लिए है। आज तो जिन्हें मेहनत बचानेवाले यंत्र कहते हैं, उनके पीछे लोग पागल हो गए हैं। उनसे मेहनत जरूर बचती है, लेकिन लाखों लोग बेकार होकर भूखों मरते हुए रास्तों पर भटकते हैं। समय और श्रम की बचत तो मैं भी चाहता हूँ, परंतु वह किसी खास वर्ग की नहीं, बल्कि सारी मानव–जाति की होनी चाहिए। कुछ गिने–गिनाए लोगों के पास संपत्ति जमा हो, ऐसा नहीं, बल्कि सबके पास जमा हो, ऐसा मैं चाहता हूँ। आज तो करोड़ों की गरदन पर कुछ लोगों के सवार हो जाने में यंत्र मददगार हो रहे हैं। यंत्रों के उपयोग के पीछे जो प्रेरक कारण है, वह श्रम की बचत नहीं है, बल्कि धन का लोभ है। आज की इस चालू अर्थव्यवस्था के खिलाफ मैं अपनी तमाम ताकत लगाकर युद्ध चला रहा हूँ।’

रामचंद्रन ने आतुरता से पूछा, ‘तब तो बापूजी, आपका झगड़ा यंत्रों

के खिलाफ नहीं, बल्कि आज यंत्रों का जो बुरा उपयोग हो रहा है, उसके खिलाफ है।’

‘जरा भी आनाकानी किए बिना मैं कहता हूँ कि ‘हाँ’। लेकिन मैं इतना जोड़ना चाहता हूँ कि सबसे पहले यंत्रों की खोज और विज्ञान लोभ के साधन नहीं रहने चाहिए। फिर मजदूरों से उनकी ताकत से ज्यादा काम नहीं लिया जाएगा और यंत्र रुकावट बनने के बजाय मददगार हो जाएँगे। मेरा उद्देश्य[17] तमाम यंत्रों का नाश करने का नहीं है, बल्कि उनकी हद बाँधने का है।’

रामचंद्रन ने कहा, ‘इस दलील को आगे बढ़ाएँ तो उसका मतलब यह होता है कि भौतिक[18] शक्ति से चलनेवाले और भारी पेचीदा तमाम यंत्रों का त्याग करना चाहिए।’

गांधीजी ने मंजूर करते हुए कहा, ‘त्याग करना भी पड़े, लेकिन एक बात मैं साफ करना चाहूँगा। हम जो कुछ करें। उसमें मुख्य विचार इनसान के भले का होना चाहिए। ऐसे यंत्र नहीं होने चाहिए, जो काम न रहने के कारण आदमी के अंगों को जड़ और बेकार बना दें। इसलिए यंत्रों को मुझे परखना होगा। जैसे सिंगर की सीने की मशीन का मैं स्वागत करूँगा। आज की सब खोजों में जो बहुत काम की थोड़ी खोजें हैं, उनमें से यह एक सीने की मशीन है। उसकी खोज के पीछे अद्‍भुत इतिहास है। सिंगर ने अपनी पत्नी को सीने और बखिया लगाने का उकतानेवाला काम करते देखा। पत्नी के प्रति रहे उसके प्रेम ने गैर–जरूरी मेहनत से उसे बचाने के लिए सिंगर को ऐसी मशीन बनाने की प्रेरणा मिली। ऐसी खोज करके उसने न सिर्फ अपनी पत्नी का ही श्रम बचाया, बल्कि जो भी ऐसी सीने की मशीन खरीद सकते हैं, उन सबको हाथ से सीने के उबाने वाले श्रम से छुड़ाया है।’

रामचंद्रन ने कहा, ‘लेकिन सिंगर की सीने की मशीनें बनाने के लिए तो बड़ा कारखाना चाहिए और उसमें भौतिक शक्ति से चलनेवाले यंत्रों का उपयोग करना ही पड़ेगा?’

रामचंद्रन के इस विरोध में सिर्फ ज्यादा जानने की इच्छा ही थी। गांधीजी ने मुसकराते हुए कहा, ‘हाँ, लेकिन मैं इतना कहने की हद तक समाजवादी तो हूँ ही कि ऐसे कारखानों का मालिक राष्ट्र हो या जनता की सरकार की ओर से ऐसे कारखाने चलाए जाएँ, उनकी हस्ती नफे के लिए नहीं बल्कि लोगों के भले के लिए हो। लोभ की जगह प्रेम को कायम करने का उसका उद्देश्य हो। मैं तो यह चाहता हूँ कि मजदूरों की हालत में कुछ सुधार हो। धन के पीछे आज जो पागल दौड़ चल रही है, वह रुकनी चाहिए। मजदूरों को सिर्फ अच्छी रोजी मिले, इतना ही बस नहीं है। उनसे हो सके—ऐसा काम उन्हें रोज मिलना चाहिए। ऐसी हालत में यंत्र जितना सरकार को या उसके मालिक को लाभ पहुँचाएगा, उतना ही लाभ उसके चलानेवाले मजदूर को पहुँचाएगा। मेरी कल्पना में यंत्रों के बारे में जो कुछ अपवाद हैं, उनमें से एक यह है। सिंगर मशीन के पीछे जो प्रेम था, इसके लिए मानव–सुख का विचार मुख्य[19] था। उस यंत्र का उद्देश्य है मानव–श्रम की बचत। उसका इस्तेमाल करने के पीछे मकसद धन के लोभ का नहीं होना चाहिए, बल्कि प्रामाणिक रीति से[20] दया का होना

चाहिए। मसलन, टेढ़े तकुवे को सीधा बनानेवाले यंत्र का मैं बहुत स्वागत करूँगा। लेकिन लुहारों का तकुवे बनाने का काम ही खत्म हो जाए, यह मेरा उद्देश्य नहीं हो सकता। जब तकुवा टेढ़ा हो जाए तब हर एक कातनेवाले के पास तकुवा सीधा कर लेने के लिए यंत्र हो, इतना ही मैं चाहता हूँ। इसलिए लोभ की जगह हम प्रेम को दें। तब फिर सब अच्छा–ही–अच्छा होगा।'

मुझे नहीं लगता कि ऊपर के संवाद में गांधीजी ने जो कहा है, उसके बारे में इन आलोचकों में से किसी का सिद्धांत[21] की दृष्टि से विरोध हो। देह की तरह यंत्र भी, अगर वह आत्मा के विकास में मदद करता हो तो, और जितनी हद तक मदद करता हो उतनी हद तक ही उपयोगी है।

पश्चिम की सभ्यता के बारे में भी ऐसा ही है। 'पश्चिम की सभ्यता मनुष्य की आत्मा की महाशत्रु है'—इस कथन का विरोध करते हुए मि. कोल लिखते हैं—'मैं कहता हूँ कि स्पेन और अबीसीनिया के भयंकर संहार,[22] हमारे सिर पर हमेशा लटकनेवाला भय, सब तरह की रिद्धि–सिद्धि पैदा करने की शक्ति मौजूद होने पर भी करोड़ों दारिद्र्य, ये सब पश्चिमी सभ्यता के दूषण[23] हैं, गंभीर दूषण हैं। लेकिन वे कुदरती नहीं हैं, सभ्यता की जड़ नहीं हैं।...मैं यह नहीं कहता कि हम अपनी इस सभ्यता को सुधारेंगे; लेकिन वह सुधर ही नहीं सकती, ऐसा मैं नहीं मानता। जो चीजें मानव की आत्मा के लिए जरूरी हैं, उनके साफ इनकार पर उस सभ्यता की रचना हुई है, ऐसा मैं नहीं मानता।' बिलकुल सही बात है। और गांधीजी ने उस सभ्यता के जो दूषण बताए, वे कुदरती नहीं थे, बल्कि उस सभ्यता की प्रवृत्तियों में रहे दूषण थे; और इस पुस्तक में गांधीजी का मकसद भारतीय सभ्यता की प्रवृत्तियाँ पश्चिम की सभ्यता की प्रवृत्तियों से कितनी भिन्न हैं, यही दिखाने का था। पश्चिम की सभ्यता को सुधारना नामुमकिन नहीं है, मि. कोल की इस बात से गांधीजी पूरी तरह सहमत[24] होंगे; उनको यह भी मंजूर होगा कि पश्चिम को पश्चिम के ढंग का ही स्वराज चाहिए; वे आसानी से यह भी स्वीकार करेंगे कि वह स्वराज 'गांधी जैसे आत्म–निग्रहवाले[25] पुरुषों के विचार के अनुसार तो होगा, लेकिन वे पुरुष हमारे पश्चिम के ढंग के होंगे; और वह ढंग गांधी या हिंदुस्तान का नहीं, पश्चिम का अपना निराला ही ढंग होगा।'

सिद्धांत की मर्यादा

अध्यापक कोल ने नीचे की उलझन सामने रखी है—'जब जर्मन और इटालियन विमानी स्पेन की प्रजा का संहार कर रहे हों, जब जापान के विमानी चीन के शहरों में हजारों लोगों को कत्ल कर रहे हों, जब जर्मन सेनाएँ आस्ट्रिया में घुस चुकी हों और चेकोस्लोवाकिया में घुस जाने की धमकियाँ दे रही हों, जब अबीसीनिया पर बम बरसाकर उसे जीत लिया गया हो, तब आज के ऐसे समय में क्या यह (अहिंसा का) सिद्धांत टिक सकेगा? दो–एक बरस पहले मैं तमाम संजोगों में युद्ध का और मृत्युकारी हिंसा का विरोध करता था। लेकिन आज युद्ध के बारे में मेरे दिल में नापसंदगी और नफरत होने पर भी इन कत्लेआमों–हत्याकांडों

को रोकने के लिए मैं युद्ध का खतरा जरूर उठाऊँगा।'

उनके मन में एक–दूसरे के विरोधी ये विचार कैसा सख्त संघर्ष मचा रहे हैं, यह नीचे के स्तरों से जाहिर होता है। वे कहते हैं—

'मैं युद्ध का खतरा जरूर उठाऊँगा, परंतु अभी भी मेरा वह दूसरा व्यक्तित्व[26] इनसान की हत्या करने के विचार से घबराकर, चोट खाकर पीछे हटता है। मैं खुद तो दूसरे की जान लेने के बजाय अपनी जान देना ज्यादा पसंद करूँगा। लेकिन अमुक संजोगों में खुद मर–मिटने के बजाय दूसरे की जान लेने की कोशिश करना क्या मेरा फर्ज नहीं होगा? गांधी शायद जवाब देंगे कि जिसने व्यक्तिगत[27] स्वराज पाया है, उसके सामने ऐसा धर्मसंकट[28] पैदा ही नहीं होगा। ऐसा व्यक्तिगत स्वराज मैंने पाया है, यह मेरा दावा नहीं है। लेकिन खयाल कीजिए कि मैंने ऐसा स्वराज पा लिया है, तो भी उससे पश्चिम यूरोप में आज के समय मेरे लिए यह सवाल कुछ कम जोरदार हो जाएगा, ऐसा मुझे विश्वास नहीं होता।'

मि. कोल ने जो संजोग बताए हैं, वे मनुष्य की श्रद्धा[29] की कसौटी जरूर करते हैं। लेकिन इसका जवाब गांधीजी अनेक बार दे चुके हैं, हालाँकि उन्होंने अपना व्यक्तिगत स्वराज पूरी तरह पाया नहीं है; क्योंकि जब तक दूसरे देशबंधुओं ने स्वराज नहीं पाया है, तब तक वे अपने पाए हुए स्वराज को अधूरा ही मानते हैं। लेकिन वे श्रद्धा के साथ जीते हैं और अहिंसा के बारे में उनकी जो श्रद्धा है, वह इटली या जापान के किए हुए कत्लेआमों की बात सुनते ही डगमगाने नहीं लगती। क्योंकि हिंसा में से हिंसा के ही नतीजे पैदा होते हैं, और एक बार उस रास्ते पर जा पहुँचे कि फिर उसका कोई अंत ही नहीं आता। 'चीन का पक्ष लेकर आपको लड़ना चाहिए' ऐसा कहनेवाले एक चीनी मित्र को जवाब देते हुए 'वार रजिस्टर' नामक पत्र में फिलिप ममफर्ड ने लिखा है—

'आपकी शत्रु तो जापान की सरकार है; जापान के किसान और सैनिक आपके दुश्मन नहीं हैं। उन अभागे और अनपढ़ लोगों को तो मालूम भी नहीं कि उन्हें क्यों लड़ने का हुक्म दिया जाता है! फिर भी, अगर आप अपने देश के बचाव के लिए मौजूदा लश्करी तरीकों का उपयोग करेंगे, तो आपको इन बेकसूर लोगों को ही—जो आपके सच्चे दुश्मन नहीं हैं, उन्हीं को—मारना पड़ेगा। अहिंसा की जो रीति गांधीजी ने हिंदुस्तान में आजमाई, उसी के जरिए अगर चीन अपनी रक्षा करने की कोशिश करेगा और गांधीजी की वह रीति चीन के महान् धर्मगुरुओं के उपदेश से बहुत ज्यादा मेल खाती है, तो मैं बेधड़क कहूँगा कि यूरोप के शस्त्रयुद्ध की रीति की नकल करने के बजाय इस अहिंसा की रीति से उसे बहुत ज्यादा सफलता मिलेगी। चीन की जनता, जो जगत् की सबसे ज्यादा शांतिप्रिय प्रजा है, जगत् की किसी भी लड़ाकू प्रजा के बनिस्बत ज्यादा लंबे अरसे तक अपने को और अपनी संस्कृति को कायम रख सकी है, यह हकीकत ही मानवजाति के लिए एक सबक है। जो शूरवीर चीनी अपने देश के बचाव के लिए लड़ रहे हैं, उनके लिए हमें आदर नहीं है, ऐसा आप न मानें। हम उनके त्याग और बलिदान की भारी कद्र करते हैं और समझते हैं कि वे हमसे भिन्न सिद्धांतों को माननेवाले हैं। फिर भी हम तो मानते हैं कि हिंसा सब संजोगों में बुरी है और

उसमें से अच्छे फल निकलना असंभव है। अहिंसा का पालन आपको तमाम दु:खों से उबार तो नहीं लेगा, लेकिन मैं मानता हूँ कि आपके सब शस्त्र–अस्त्रों और लश्करों के बनिस्बत अहिंसा एक अरसे के बाद आपके भावी विजेता के खिलाफ ज्यादा असरकारक साबित होगी; और सबसे ज्यादा महत्त्व[30] की बात तो यह है कि इससे आपकी प्रजा के आदर्श जीवित रहेंगे।'

कुमारी रैथबोन ने ऐसी ही एक समस्या[31] रखी है। वे लिखती हैं—'जालिम के सामने सिर झुकाकर और अपनी अंदर की आवाज के विरुद्ध चलकर अगर छोटे–मुलायम बच्चों और बच्चियों को बचाया जा सकता हो, तो इस दुनिया में ऐसा कौन आदमी—सामान्य या संतपुरुष— है, जो उनकी हत्या होने देगा? गांधी इस सवाल का जवाब नहीं देते। उन्होंने यह सवाल उठाया तक नहीं है। इस बारे में ईसा मसीह का कहना ज्यादा स्पष्ट[32] है। उनके शब्द ये हैं—'मुझ पर श्रद्धा रखनेवाले इन नन्हे–मुन्नों के खिलाफ जो कोई हाथ उठाए, उसके गले में चक्की का पाट लटकाकर उसे समुद्र के पानी में डुबो दिया जाए।... यों हमें इस बारे में गांधीजी के बनिस्बत ईसा मसीह की ओर से ज्यादा मदद मिलती है।'

मुझे लगता है, ईसा मसीह के वचन सिर्फ उनका पुण्य–प्रकोप[33] प्रकट करते हैं और उन्होंने जो कदम उठाने की बात कही है, वह गुनहगारों को कोई और आदमी सजा करे, इसलिए नहीं, बल्कि गुनहगार खुद अपने को प्रायश्चित्त[34] के तौर पर सजा दे इसलिए है। और क्या कुमारी रैथबोन को पक्का यकीन है कि जिसे वे ईसा का उपाय मानती हैं, उसे आजमाकर वे बालकों को मौत से बचा सकेंगी? गांधीजी ने यह सवाल उठाया ही नहीं है, ऐसा उनका मानना सही नहीं है। उन्होंने यह सवाल उठाया है और उसका साफ–साफ जवाब भी दिया है; जैसे १३०० बरस पहले उन अमर मुसलिम शहीदों ने भी यह सवाल उठाया था और अपने काम से उसका जवाब दिया था। जालिम के सामने झुकने और अपनी अंतर–आत्मा को धोखा देने के बजाय अपने बीबी–बच्चों को भूखे–प्यासे लड़पते हुए मरने देना ही उन्होंने ज्यादा पसंद किया था; क्योंकि जालिम के सामने झुकने और अपनी अंतर–आत्मा को धोखा देने का परिणाम यही होता है कि जालिम को नए–नए जुल्म गुजारने का बढ़ावा मिलता है।

लेकिन कुमारी रैथबोन ने भी 'हिंद स्वराज' को 'बहुत भारी असरकारक पुस्तक' कहा है और लिखा है कि 'उसे पढ़कर, उसमें रही भारी प्रामाणिकता[35]को देखकर अपनी प्रामाणिकता की जाँच करना मेरे लिए जरूरी हो गया है। लोगों से मेरी विनती है कि वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें।'

'आर्यन पाथ' मासिक के संपादकों ने यह 'हिंद स्वराज अंक' निकालकर शांति और अहिंसा के कार्य की निर्विवाद[36] सेवा की है, ऐसा हमें कहना होगा।

—महादेव हरिभाई देसाई

(अंग्रेजी के गुजराती अनुवाद से)



उपोद्धात

लॉर्ड लोधियन जब सेवाग्राम आए थे तब उन्होंने मुझसे 'हिंद स्वराज'की नकल माँगी थी। उन्होंने कहा था—'गांधीजी आजकल जो कुछ भी कह रहे हैं, वह इस छोटी सी किताब में बीज के रूप में है, और गांधीजी को ठीक से समझने के लिए यह किताब बार–बार पढ़नी चाहिए।'

अचरज की बात यह है कि उसी अरसे में श्रीमती सोफिया वाड़िया ने 'हिंद स्वराज' के बारे में एक लेख लिखा था, जिसमें उन्होंने हमारे सब मंत्रियों से, धारासभा के सदस्यों से, गोरे और भारतीय सिविलियनों से, इतना ही नहीं, आज के लोक–शासन के अहिंसक प्रयोग की सफलता चाहनेवाले हर एक नागरिक से यह किताब बार–बार पढ़ने की सिफारिश की थी। उन्होंने लिखा था—'अहिंसक आदमी अपने ही घर में तानाशाही कैसे चला सकता है? वह शराब कैसे बेच सकता है? अगर वह वकील हो तो अपने मुवक्किल को अदालत में जाकर लड़ने की सलाह कैसे दे सकता है? इन सारे सवालों का जवाब देते समय बहुत ही महत्त्व के राजनीतिक सवालों का विचार करना जरूरी हो जाता है। 'हिंद स्वराज' में इन प्रश्नों की सिद्धांत की दृष्टि से चर्चा की गई है। इसलिए वह पुस्तक लोगों में ज्यादा पढ़ी जानी चाहिए, और उसमें जो कहा गया है, उसके बारे में लोकमत तैयार करना चाहिए।'

श्रीमती वाड़िया की विनती ठीक वक्त पर की गई है। १९०९ में गांधीजी ने विलायत से लौटते हुए जहाज पर यह पुस्तक लिखी थी। हिंसक साधनों में विश्वास रखनेवाले कुछ भारतीयों के साथ जो चर्चाएँ हुई थीं, उन पर से उन्होंने मूल पुस्तक गुजराती में लिखी थी और 'इंडियन ओपीनियन' नामक साप्ताहिक में सिलसिलेवार लेखों में उसे प्रकट किया गया था। बाद में उसे पुस्तक के रूप में प्रगट किया गया और बंबई सरकार ने उसे जब्त किया। गांधीजी ने मि. कैलनबैक के लिए उस किताब का अंग्रेजी में जो अनुवाद किया था, उसे बंबई सरकार के हुक्म के जवाब के रूप में प्रकाशित किया गया। गोखलेजी १९१२ में जब दक्षिण अफ्रीका गए, तब उन्होंने वह अनुवाद देखा। उन्हें उसका मजमून इतना अनगढ़ लगा और उसके विचार ऐसे जल्दबाजी में बने हुए लगे कि उन्होंने भविष्यवाणी की कि गांधीजी एक साल भारत में रहने के बाद खुद ही उस पुस्तक का नाश कर देंगे। गोखलेजी

की वह भविष्यवाणी सच नहीं निकली। १९२१ में गांधीजी ने उस पुस्तक के बारे में लिखते हुए कहा था—

‘वह द्वेष–धर्म की जगह प्रेम–धर्म सिखाती है; हिंसा की जगह आत्म–बलिदान को रखती है; पशुबल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल को खड़ा करती है। उसमें से मैंने सिर्फ एक ही शब्द —और वह एक महिला मित्र की इच्छा को मानकर—रद्द किया है। उसे छोड़कर कुछ भी फेरबदल नहीं किया है। इस किताब में आधुनिक[1] सभ्यता की सख्त टीका की गई है। यह १९०९ में लिखी गई थी। इसमें मैंने जो मान्यता प्रकट की है, वह आज पहले से ज्यादा मजबूत बनी है। लेकिन मैं पाठकों को एक चेतावनी देना चाहता हूँ। वे ऐसा न मान लें कि इस किताब में जिस स्वराज की तसवीर मैंने खड़ी की है, वैसा स्वराज कायम करने के लिए आज मेरी कोशिशें चल रही हैं। मैं जानता हूँ कि अभी हिंदुस्तान उसके लिए तैयार नहीं है। ऐसा कहने में शायद ढिठाई का भास हो, लेकिन मुझे तो पक्का विश्वास है। उसमें जिस स्वराज की तसवीर मैंने खींची है, वैसा स्वराज पाने की मेरी निजी कोशिश जरूर चल रही है। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि आज की मेरी सामूहिक[2] स प्रवृत्ति का ध्येय तो हिंदुस्तान की प्रजा की इच्छा के मुताबिक पार्लियामेंटरी ढंग का स्वराज पाना है।’

१९३८ में भी गांधीजी को कुछ जगहों पर भाषा बदलने के सिवा और कुछ फेरबदल करने जैसा नहीं लगा। इसलिए यह किताब किसी भी प्रकार की काट–छाँट के बिना मूल रूप में ही फिर से प्रकाशित की जाती है।

लेकिन इसमें बताए हुए स्वराज के लिए हिंदुस्तान तैयार हो या न हो, हिंदुस्तानियों के लिए यही उत्तम[3] है कि वे इस बीज–रूप ग्र ंथ का अध्ययन करें। सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों के स्वीकार से अंत में क्या नतीजा आएगा, उसकी तसवीर इसमें है। इसे पढ़कर उन सिद्धांतों को स्वीकार करना चाहिए या उनका त्याग, यह तो पाठक ही तय करें।

वर्धा, २.२.१९३८

—महादेव हरिभाई देसाई

(अंग्रेजी के गुजराती अनुवाद से)



संदेश[*]

जिन सिद्धांतों के समर्थन[1] के लिए 'हिंद स्वराज' लिखी गई थी, उन सिद्धांतों को आप जाहिरात करना चाहती हैं, यह मुझे अच्छा लगता है। मूल पुस्तक गुजराती में लिखी गई थी; अंग्रेजी आवृत्ति[2] गुजराती का तरजुमा है। यह पुस्तक अगर आज मुझे फिर से लिखनी हो, तो कहीं–कहीं मैं उसकी भाषा बदलूँगा। लेकिन इसे लिखने के बाद जो तीस साल मैंने अनेक आँधियों में बिताए हैं, उनमें मुझे इस पुस्तक में बताए हुए विचारों में फेरबदल करने का कुछ भी कारण नहीं मिला। पाठक इतना खयाल में रखें कि कुछ कार्यकर्ताओं के साथ, जिनमें एक कट्टर अराजकतावादी[3] थे, मेरी जो बातें हुई थीं, वे जैसी–की–तैसी मैंने इस पुस्तक में दे दी हैं। पाठक इतना भी जान लें कि दक्षिण अफ्रीका के हिंदुस्तानियों में जो सड़न दाखिल होनेवाली ही थी, उसे इस पुस्तक ने रोका था। इसके विरुद्ध दूसरे पल्ले में रखने के लिए पाठक मेरे एक स्वर्गीय मित्र की यह राय भी जान लें कि 'यह एक मूर्ख आदमी की रचना है।'

सेवाग्राम, १४–०७–३८

—मोहनदास करमचंद गांधी

(अंग्रेजी के गुजराती अनुवाद से)



'हिंद स्वराज' के बारे में

मेरी इस छोटी सी किताब की ओर विशाल जनसंख्या का ध्यान खिंच रहा है, यह सचमुच ही मेरा सौभाग्य है। यह मूल तो गुजराती में लिखी गई है। इसका जीवन–क्रम अजीब है। यह पहले–पहल दक्षिण अफ्रीका में छपनेवाले साप्ताहिक 'इंडियन ओपीनियन' में प्रगट हुई थी। १९०९ में लंदन से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए जहाज पर हिंदुस्तानियों के हिंसावादी पंथ को और उसी विचारधारावाले दक्षिण अफ्रीका के एक वर्ग को दिए गए जवाब के रूप में यह लिखी गई थी। लंदन में रहनेवाले हर एक नामी अराजकतावादी हिंदुस्तानी के संपर्क में मैं आया था। उसकी शूरवीरता[1] का असर मेरे मन पर पड़ा था, लेकिन मुझे लगा कि उनके जोश ने उलटी राह पकड़ ली है। मुझे लगा कि हिंसा हिंदुस्तान के दुःखों का इलाज नहीं है और उसकी संस्कृति[2] को देखते हुए उसे आत्मरक्षा[3] के लिए कोई अलग और ऊँचे प्रकार का शस्त्र काम में लाना चाहिए। दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह उस वक्त मुश्किल से दो साल का बच्चा था। लेकिन उसका विकास इतना हो चुका था कि उसके बारे में कुछ हद तक आत्मविश्वास से लिखने की मैंने हिम्मत की थी। मेरी यह लेखमाला पाठक–वर्ग को इतनी पसंद आई कि वह किताब के रूप में प्रकाशित की गई। हिंदुस्तान में उसकी ओर लोगों का कुछ ध्यान गया। बंबई सरकार ने उसके प्रचार की मनाही कर दी। उसका जवाब मैंने किताब का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित करके दिया। मुझे लगा कि अपने अंग्रेज मित्रों को इस किताब के विचारों से वाकिफ करना उनके प्रति[4] मेरा फर्ज है।

मेरी राय में यह किताब ऐसी है कि यह बालक के हाथ में भी दी जा सकती है। यह द्वेष–धर्म की जगह प्रेम–धर्म सिखाती है; हिंसा की जगह आत्म–बलिदान को रखती है; पशुबल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल को खड़ा करती है। इसकी अनेक आवृत्तियाँ हो चुकी हैं; और जिन्हें इसे पढ़ने की परवाह है, उनसे इसे पढ़ने की मैं जरूर सिफारिश करूँगा। इसमें से मैंने सिर्फ एक ही शब्द—और वह एक महिला मित्र की इच्छा को मानकर—रद्द किया है; इसके सिवा और कोई फेरबदल मैंने इसमें नहीं किया है।

इस किताब में 'आधुनिक सभ्यता' की सख्त टीका की गई है। यह १९०९ में लिखी गई थी। इसमें मेरी जो मान्यता प्रगट की गई है, वह आज पहले से ज्यादा मजबूत बनी है। मुझे

लगता है कि अगर हिंदुस्तान 'आधुनिक सभ्यता' का त्याग करेगा, तो उससे उसे लाभ ही होगा।

ले किन मैं पाठकों को एक चेतावनी देना चाहता हूँ। वे ऐसा न मान लें कि इस किताब में जिस स्वराज की तसवीर मैंने खड़ी की है, वैसा स्वराज कायम करने के लिए आज मेरी कोशिशें चल रही हैं। मैं जानता हूँ कि अभी हिंदुस्तान उसके लिए तैयार नहीं है। ऐसा कहने में शायद ढिठाई का भास हो, लेकिन मुझे तो पक्का विश्वास है कि इसमें जिस सवराज्य की तसवीर मैंने खींची है, वैसा स्वराज पाने की मेरी निजी कोशिश जरूर चल रही है। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि आज मेरी सामूहिक[5] प्रवृत्ति का ध्येय तो हिंदुस्तान की प्रजा की इच्छा के मुताबिक पार्लियामेंटरी ढंग का स्वराज पाना है। रेलों या अस्पतालों का नाश करने का ध्येय मेरे मन में नहीं है, अगरचे उनका कुदरती नाश हो तो मैं जरूर उसका स्वागत करूँगा। रेल या अस्पताल दोनों में से एक भी ऊँची और बिलकुल शुद्ध संस्कृति की सूचक (चिह्न) नहीं है। ज्यादा–से–ज्यादा इतना ही कह सकते हैं कि यह एक ऐसी बुराई है, जो टाली नहीं जा सकती। दोनों में से एक भी हमारे राष्ट्र की नैतिक ऊँचाई में एक इंच की भी बढ़ती नहीं करती। उसी तरह मैं अदालतों के स्थायी[6] नाश का ध्येय मन में नहीं रखता, हालाँकि ऐसा नतीजा आए तो मुझे अवश्य बहुत अच्छा लगेगा। यंत्रों और मिलों के नाश के लिए तो मैं उससे भी कम कोशिश करता हूँ। उसके लिए लोगों की आज जो तैयारी है, उससे कहीं ज्यादा सादगी और त्याग की जरूरत रहती है।

इस पुस्तक में बताए हुए कार्यक्रम[7]के एक ही हिस्से का आज अमल हो रहा है—वह है अहिंसा। लेकिन मैं अफसोस के साथ कबूल करूँगा कि उसका अमल भी इस पुस्तक में दिखाई हुई भावना से नहीं हो रहा है। अगर हो तो हिंदुस्तान एक ही रोज में स्वराज पा जाए। हिंदुस्तान अगर प्रेम के सिद्धांत को अपने धर्म के एक सक्रिय[8] अंश के रूप में स्वीकार करे और उसे अपनी राजनीति में शामिल करे, तो स्वराज स्वर्ग से हिंदुस्तान की धरती पर उतरेगा। लेकिन मुझे दु:ख के साथ इस बात का भान है कि ऐसा होना बहुत दूर की बात है।

ये वाक्य मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि आज के आंदोलन[9] को बदनाम करने के लिए इस पुस्तक में से बहुत सी बातों का हवाला दिया जाता, मैंने देखा है। मैंने इस मतलब के लेख भी देखे हैं कि मैं कोई गहरी चाल चल रहा हूँ, आज की उथल–पुथल से लाभ उठाकर अपने अजीब खयाल भारत के सिर लादने की कोशिश कर रहा हूँ और हिंदुस्तान को नुकसान पहुँचाकर अपने धार्मिक प्रयोग कर रहा हूँ। इसका मेरे पास यही जवाब है कि सत्याग्रह ऐसी कोई कच्ची खोखली चीज नहीं है। उसमें कुछ भी दुराव–छिपाव नहीं है, उसमें कुछ भी गुप्तता नहीं है। 'हिंद स्वराज' में बताए हुए संपूर्ण जीवन–सिद्धांत के एक भाग को आचरण में लाने की कोशिश हो रही है, इसमें कोई शक नहीं। ऐसा नहीं कि उस समूचे सिद्धांत का अमल करने में जोखिम है; लेकिन आज देश के सामने जो प्रश्न[10] हैं, उसके साथ जिन हिस्सों का कोई संबंध नहीं है, ऐसे हिस्से मेरे लेखों में से देकर लोगों को भड़काने में न्याय हरगिज नहीं है।

जनवरी, १९२१

—मोहनदास करमचंद गांधी

('यंग इंडिया' के गुजराती अनुवाद से)



प्रस्तावना

इस विषय[1] पर मैंने जो बीस अध्याय[2] लिखे हैं, उन्हें पाठकों के सामने रखने की मैं हिम्मत करता हूँ।

जब मुझसे रहा ही नहीं गया, तभी मैंने यह लिखा है। बहुत पढ़ा, बहुत सोचा, विलायत में ट्रांसवाल डेप्युटेशन के साथ मैं चार माह रहा, उस बीच हो सका उतने हिंदुस्तानियों के साथ मैंने सोच–विचार किया, हो सका उतने अंग्रेजों से भी मैं मिला। अपने जो विचार मुझे आखिरी मालूम हुए, उन्हें पाठकों के सामने रखना मैंने अपना फर्ज समझा। 'इंडियन ओपीनियन' के गुजराती ग्राहक आठ सौ के करीब हैं। हर ग्राहक के पीछे कम–से–कम दस आदमी दिलचस्पी से यह अखबार पढ़ते हैं, ऐसा मैंने महसूस किया है। जो गुजराती नहीं जानते, वे दूसरों से पढ़वाते हैं। इन भाइयों ने हिंदुस्तान की हालत के बारे में मुझसे बहुत सवाल किए हैं। ऐसे ही सवाल मुझसे विलायत में किए गए थे। इसलिए मुझे लगा कि जो विचार मैंने यों खानगी में बताए, उन्हें सबके सामने रखना गलत नहीं होगा।

जो विचार यहाँ रखे गए हैं, वे मेरे हैं और मेरे नहीं भी हैं। वे मेरे हैं, क्योंकि उनके मुताबिक बरतने की मैं उम्मीद रखता हूँ; वे मेरी आत्मा में गढ़े–जड़े हुए जैसे हैं। वे मेरे नहीं हैं, क्योंकि सिर्फ मैंने ही उन्हें सोचा हो, सो बात नहीं। कुछ किताबें पढ़ने के बाद वे बने हैं। दिल में भीतर–ही–भीतर मैं जो महसूस करता था, उसका इन किताबों ने समर्थन[3] किया।

यह साबित करने की जरूरत नहीं कि जो विचार मैं पाठकों के सामने रखता हूँ, वे हिंदुस्तान में जिन पर (पश्चिमी) सभ्यता की धुन सवार नहीं हुई है, ऐसे बहुतेरे हिंदुस्तानियों के हैं। लेकिन यही विचार यूरोप के हजारों लोगों के हैं, यह मैं अपने पाठकों के मन में अपने सबूतों से ही जाँचना चाहता हूँ। जिसे इसकी खोज करनी हो, जिसे ऐसी फुरसत हो, वह आदमी वे किताबें देख सकता है। अपनी फुरसत से उन किताबों में से कुछ–न–कुछ पाठकों के सामने रखने की मेरी उम्मीद है।

'इंडियन ओपीनियन' के पाठकों या औरों के मन में मेरे लेख पढ़कर जो विचार आएँ, उन्हें अगर वे मुझे बताएँगे तो मैं उनका आभारी रहूँगा।

उद्देश्य सिर्फ देश की सेवा करने का और सत्य की खोज करने का तथा उसके मुताबिक बरतने का है। इसलिए अगर मेरे विचार गलत साबित हों, तो उन्हें पकड़ रखने का मेरा आग्रह नहीं है। अगर वे सच साबित हों तो दूसरे लोग भी उनके मुताबिक बरतें, ऐसी देश के भले के लिए साधारण तौर पर मेरी भावना रहेगी।

सुभीते के लिए लेखों को पाठक और संपादक के बीच के संवाद का रूप दिया गया है।

किलडोनन कैसल,

२२–११–१९०९

—मोहनदास करमचंद गांधी



: १ :

कांग्रेस और उसके कर्ता–धर्ता

पाठक : आजकल हिंदुस्तान में स्वराज की हवा चल रही है। सब हिंदुस्तानी आजाद होने के लिए तरस रहे हैं। दक्षिण अफ्रीका में भी वही जोश दिखाई दे रहा है। हिंदुस्तानियों में अपने हक पाने की बड़ी हिम्मत आई हुई मालूम होती है। इस बारे में क्या आप अपने खयाल बताएँगे?

संपादक : आपने सवाल ठीक पूछा है। लेकिन इसका जवाब देना आसान बात नहीं है। अखबार का एक काम तो है लोगों की भावनाएँ जानना और उन्हें जाहिर करना; दूसरा काम है लोगों में अमुक जरूरी भावनाएँ पैदा करना; और तीसरा काम है लोगों में दोष हों तो चाहे जितनी मुसीबतें आने पर भी बेधड़क होकर उन्हें दिखाना। आपके सवाल का जवाब देने में ये तीनों काम साथ–साथ आ जाते हैं। लोगों की भावनाएँ कुछ हद तक बतानी होंगी, न हों वैसी भावनाएँ तो उनमें पैदा करने की कोशिश करनी होगी और उनके दोषों की निंदा भी करनी होगी। फिर भी आपने सवाल किया है, इसलिए उसका जवाब देना मेरा फर्ज मालूम होता है।

पाठक : क्या स्वराज की भावना हिंद में पैदा हुई आप देखते हैं?

संपादक : वह तो जब से नेशनल कांग्रेस कायम हुई, तभी से देखने में आई है। 'नेशनल' शब्द का अर्थ ही वह विचार जाहिर करता है।

पाठक : यह तो आपने ठीक नहीं कहा। नौजवान हिंदुस्तानी आज कांग्रेस की परवाह ही नहीं करते। वे तो उसे अंग्रेजों का राज्य निभाने का साधन[1] मानते हैं।

संपादक : नौजवानों का ऐसा खयाल ठीक नहीं है। हिंद के दादा दादाभाई नौरोजी ने जमीन तैयार नहीं की होती तो नौजवान आज जो बातें कर रहे हैं, वह भी नहीं कर पाते। मि. ह्यूम ने जो लेख लिखे, जो फटकारें हमें सुनाईं, जिस जोश से हमें जगाया, उसे कैसे भुलाया जाए? सर विलियम वेडरबर्न ने कांग्रेस का मकसद हासिल करने के लिए अपना

तन, मन और धन सब दे दिया था। उन्होंने अंग्रेजी राज्य के बारे में जो लेख लिखे हैं, वे आज भी पढ़ने लायक हैं। प्रोफेसर गोखले ने जनता को तैयार करने के लिए, भिखारी जैसी हालत में रहकर अपने बीस साल दिए हैं। आज भी वे गरीबी में रहते हैं। मरहूम जस्टिस बदरुद्दीन ने भी कांग्रेस के जरिए स्वराज का बीज बोया था। यों बंगाल, मद्रास, पंजाब वगैरह में कांग्रेस का और हिंद का भला चाहनेवाले कई हिंदुस्तानी और अंग्रेज लोग हो गए हैं, यह याद रखना चाहिए।

पाठक **:** ठहरिए, ठहरिए। आप तो बहुत आगे बढ़ गए। मेरा सवाल कुछ है और आप जवाब कुछ और दे रहे हैं। मैं स्वराज की बात करता हूँ और आप परराज्य की बात करते हैं। मुझे अंग्रेजों का नाम तक नहीं चाहिए और आप तो अंग्रेजों के नाम देने लगे। इस तरह तो हमारी गाड़ी राह पर आए, ऐसा नहीं दीखता। मुझे तो स्वराज की ही बातें अच्छी लगती हैं। दूसरी मीठी सयानी बातों से मुझे संतोष नहीं होगा।

संपादक **:** आप अधीर हो गए हैं। मैं अधीरपन बरदाश्त नहीं कर सकता। आप जरा सब्र करेंगे तो आपको जो चाहिए वही मिलेगा। ‘उतावली से आम नहीं पकते, दाल नहीं चुरती’ यह कहावत याद रखिए। आपने मुझे रोका और आपको हिंद पर उपकार करनेवालों की बात भी सुननी अच्छी नहीं लगती, यह बताता है कि अभी आपके लिए स्वराज दूर है। आपके जैसे बहुत से हिंदुस्तानी हों, तो हम (स्वराज से) दूर हटकर पिछड़ जाएँगे। वह बात जरा सोचने लायक है।

पाठक **:** मुझे तो लगता है कि ये गोल–मोल बातें बनाकर आप मेरे सवाल का जवाब उड़ा देना चाहते हैं। आप जिन्हें हिंदुस्तान पर उपकार करनेवाले मानते हैं, उन्हें मैं ऐसा नहीं मानता; फिर मुझे किसके उपकार की बात सुननी है? आप जिन्हें हिंद के दादा कहते हैं, उन्होंने क्या उपकार किया? वे तो कहते हैं कि अंग्रेज राजकर्ता न्याय करेंगे और उनसे हमें हिल–मिलकर रहना चाहिए।

संपादक **:** मुझे सविनय [2] आपसे कहना चाहिए कि उस पुरुष के बारे में आपका बेअदबी से यों बोलना हमारे लिए शर्म की बात है। उनके कामों की ओर देखिए। उन्होंने अपना जीवन हिंद को अर्पण[3] कर दिया है। उनसे यह सबक हमने सीखा। हिंद का खून अंग्रेजों ने चूस लिया है, यह सिखानेवाले माननीय दादाभाई हैं। आज उन्हें अंग्रेजों पर भरोसा है उससे क्या? हम जवानी के जोश में एक कदम आगे रखते हैं, इससे क्या दादाभाई कम पूज्य हो जाते हैं? इससे क्या हम ज्यादा ज्ञानी हो गए? जिस सीढ़ी से हम ऊपर चढ़े, उसको लात न मारने में ही बुद्धिमानी[4] है। अगर वह सीढ़ी निकाल दें तो सारी निसैनी गिर जाए, यह हमें याद रखना चाहिए। हम जब बचपन से जवानी में आते हैं तब बचपन से नफरत नहीं करते, बल्कि उन दिनों को प्यार से याद करते हैं। बरसों तक अगर मुझे कोई पढ़ाता है और उससे मेरी जानकारी जरा बढ़ जाती है, तो इससे मैं अपने शिक्षक[5] से ज्यादा ज्ञानी नहीं माना जाऊँगा; अपने शिक्षक को तो मुझे मान[6] देना ही पड़ेगा। इसी तर

हिंद के दादा के बारे में समझना चाहिए। उनके पीछे (सारी) हिंदुस्तानी जनता है, यह तो

हमें कहना ही पड़ेगा।

पाठक : यह आपने ठीक कहा। दादाभाई नौरोजी की इज्जत करनी चाहिए, यह तो समझ सकते हैं। उन्होंने और उनके जैसे दूसरे पुरुषों ने जो काम किए हैं, उनके बगैर हम आज का जोश महसूस नहीं कर पाते, यह बात ठीक लगती है। लेकिन यही बात प्रोफेसर गोखले साहब के बारे में हम कैसे मान सकते हैं? वे तो अंग्रेजों के बड़े भाईबंद बनकर बैठे हैं; वे तो कहते हैं कि अंग्रेजों से हमें बहुत कुछ सीखना है। अंग्रेजों की राजनीति से हम वाकिफ हो जाएँ, तभी स्वराज की बातचीत की जाए। उन साहब के भाषणों से तो मैं ऊब गया हूँ।

संपादक : आप ऊब गए हैं, यह दिखाता है कि आपका मिजाज उतावला है। लेकिन जो नौजवान अपने माँ–बाप के ठंडे मिजाज से ऊब जाते हैं और वे (माँ–बाप) अगर अपने साथ न दौड़ें तो गुस्सा होते हैं, वे अपने माँ–बाप का अनादर[7] करते हैं। ऐसा हम समझते हैं। प्रोफेसर गोखले के बारे में भी ऐसा ही समझना चाहिए। क्या हुआ अगर प्रोफेसर गोखले हमारे साथ नहीं दौड़ते हैं? स्वराज भुगतने की इच्छा रखनेवाली प्रजा अपने बुजुर्गों का तिरस्कार[8] नहीं कर सकती। अगर दूसरे की इज्जत करने की आदत हम खो बैठें, तो हम निकम्मे हो जाएँगे। जो प्रौढ़[9] और तजुरबेकार हैं, वे ही स्वराज भुगत सकते हैं, न कि बे–लगाम लोग। और देखिए कि जब प्रोफेसर गोखले ने हिंदुस्तान की शिक्षा[10] के लिए त्याग किया। तब ऐसे कितने हिंदुस्तानी थे? मैं तो खासतौर पर मानता हूँ कि प्रोफेसर गोखले जो कुछ भी करते हैं, वह शुद्ध भाव से और हिंदुस्तान का हित मानकर करते हैं। हिंद के लिए अगर अपनी जान भी देनी पड़े तो वे दे देंगे, ऐसी हिंद के लिए उनकी भक्ति है। वे जो कुछ कहते हैं, वह किसी की खुशामद करने के लिए नहीं, बल्कि सही मानकर कहते हैं। इसलिए हमारे मन में उनके लिए पूज्य भाव होना चाहिए।

पाठक : तो क्या वे साहब जो कहते हैं उसके मुताबिक हमें भी करना चाहिए?

संपादक : मैं ऐसा कुछ नहीं कहता। अगर हम शुद्ध बुद्धि से अलग राय रखते हैं, तो उस राय के मुताबिक चलने की सलाह खुद प्रोफेसर साहब हमें देंगे। हमारा मुख्य काम तो यह है कि हम उनके कामों की निंदा न करें; हमसे वे महान् हैं। ऐसा मानें और यकीन रखें कि उनके मुकाबिले में हमने हिंद के लिए कुछ भी नहीं किया है। उनके बारे में कुछ अखबार जो अशिष्टतापूर्वक[11] लिखते हैं, उसकी हमें निंदा करनी चाहिए और प्रोफेसर गोखले जैसों को हमें स्वराज के स्तंभ[12] मानना चाहिए। उनके खयाल गलत और हमारे ही सही हैं, या हमारे खयालों के मुताबिक न बरतनेवाले देश के दुश्मन हैं, ऐसा मान लेना बुरी भावना है।

पाठक : आप जो कुछ कहते हैं वह अब मेरी समझ में कुछ आता है। फिर भी मुझे उसके बारे में सोचना होगा। पर मि. ह्यूम, सर विलियम वेडरबर्न वगैरह के बारे में आपने जो कहा, उसमें तो हद हो गई।

संपादक : जो नियम हिंदुस्तानियों के बारे में है, वही अंग्रेजों के बारे में समझना चाहिए। सारे–के–सारे अंग्रेज बुरे हैं, ऐसा तो मैं नहीं मानूँगा। बहुत से अंग्रेज चाहते हैं कि हिंदुस्तान

को स्वराज मिले। उस प्रजा में स्वार्थ ज्यादा है, यह ठीक है, लेकिन उससे हर एक अंग्रेज बुरा है, ऐसा साबित नहीं होता। जो हक—न्याय[13] —चाहते हैं, उन्हें सबके साथ न्याय करना होगा। सर विलियम हिंदुस्तान का बुरा चाहनेवाले नहीं हैं, इतना हमारे लिए काफी है। ज्यों–ज्यों हम आगे बढ़ेंगे, त्यों–त्यों आप देखेंगे कि अगर हम न्याय की भावना से काम लेंगे, तो हिंदुस्तान का छुटकारा जल्दी होगा। आप यह भी देखेंगे कि अगर हम तमाम अंग्रेजों से द्वेष[14] करेंगे, तो उससे स्वराज दूर ही जानेवाला है; लेकिन अगर उनके साथ भी न्याय करेंगे, तो स्वराज के लिए हमें उनकी मदद मिलेगी।

पाठक **:** अभी तो ये सब मुझे फिजूल की बड़ी–बड़ी बातें लगती हैं। अंग्रेजों की मदद मिले और उससे स्वराज मिल जाए, ये तो आपने दो उलटी बातें कहीं। लेकिन इस सवाल का हल अभी मुझे नहीं चाहिए। उसमें समय बिताना बेकार है। स्वराज कैसे मिलेगा, यह जब आप बताएँगे तब शायद आपके विचार मैं समझ सकूँ तो समझ सकूँ। फिलहाल तो अंग्रेजों की मदद की आपकी बात ने मुझे शंका में डाल दिया है और आपके विचारों के खिलाफ मुझे भरमा दिया है। इसलिए यह बात आप आगे न बढ़ाएँ तो अच्छा हो।

संपादक **:** मैं अंग्रेजों की बात को बढ़ाना नहीं चाहता। आप शंका में पड़ गए, इसकी कोई फिकर नहीं। मुझे जो महत्त्व[15] की बात कहनी है, उसे पहले से ही बता देना ठीक होगा। आपकी शंका को धीरज से दूर करना मेरा फर्ज है।

पाठक **:** आपकी यह बात मुझे पसंद आई। इससे मुझे जो ठीक लगे, वह बात कहने की मुझमें हिम्मत आई है। अभी मेरी एक शंका रह गई है। कांग्रेस के आरंभ से स्वराज की नींव पड़ी, यह कैसे कहा जा सकता है?

संपादक **:** देखिए, कांग्रेस ने अलग–अलग जगहों पर हिंदुस्तानियों को इकट्ठा करके उनमें 'हम एक राष्ट्र हैं' ऐसा जोश पैदा किया। कांग्रेस पर सरकार की कड़ी नजर रहती थी। महसूल का हक प्रजा को होना चाहिए, ऐसी माँग कांग्रेस ने हमेशा की है। जैसा स्वराज कैनेडा में है वैसा स्वराज कांग्रेस ने हमेशा चाहा है। वैसा स्वराज मिलेगा या नहीं मिलेगा, वैसा स्वराज हमें चाहिए या नहीं चाहिए, उससे बढ़कर दूसरा कोई स्वराज है या नहीं, यह सवाल अलग है। मुझे दिखाना तो इतना ही है कि कांग्रेस ने हिंद को स्वराज का रस चखाया। इसका जस कोई और लेना चाहे तो वह ठीक न होगा, और हम भी ऐसा मानें तो बेकदर[16] ठहरेंगे। इतना ही नहीं, बल्कि जो मकसद हम हासिल करना चाहते हैं, उसमें मुसीबतें पैदा होंगी। कांग्रेस को अलग समझने और स्वराज के खिलाफ मानने से हम उसका उपयोग नहीं कर सकते।



: २ :

बंग–भंग

पाठक **:** आप कहते हैं, उस तरह विचार करने पर यह ठीक लगता है कि कांग्रेस ने स्वराज की नींव डाली। लेकिन यह तो आप मानेंगे कि वह सही जागृति[1] नहीं थी। सही जागृति कब और कैसे हुई?

संपादक **:** बीज हमेशा हमें दिखाई नहीं देता। वह अपना काम जमीन के नीचे करता है और जब खुद मिट जाता है तब पेड़ जमीन के ऊपर देखने में आता है। कांग्रेस के बारे में ऐसा ही समझिए। जिसे आप सही जागृति मानते हैं, वह तो बंग–भंग से हुई, जिसके लिए हम लॉर्ड कर्जन के आभारी हैं। बंग–भंग के वक्त बंगालियों ने कर्जन साहब से बहुत प्रार्थना की, लेकिन वे साहब अपनी सत्ता के मद में लापरवाह रहे। उन्होंने मान लिया कि हिंदुस्तानी लोग सिर्फ बकवास ही करेंगे, उनसे कुछ भी नहीं होगा। उन्होंने अपमान भरी भाषा का प्रयोग किया और जबरदस्ती बंगाल के टुकड़े किए। हम यह मान सकते हैं कि उस दिन से अंग्रेजी राज्य के भी टुकड़े हुए। बंग–भंग से जो धक्का अंग्रेजी हुकूमत को लगा, वैसा और किसी काम से नहीं लगा। इसका मतलब यह नहीं कि जो दूसरे गैर–इनसाफ हुए, वे बंग–भंग से कुछ कम थे। नमक–महसूल कुछ कम गैर–इनसाफ नहीं है। ऐसा और तो आगे हम बहुत देखेंगे। लेकिन बंगाल के टुकड़े करने का विरोध[2] करने के लिए प्रजा तैयार थी। उस वक्त प्रजा की भावना बहुत तेज थी। उस समय बंगाल के बहुतेरे नेता अपना सबकुछ न्योछावर करने को तैयार थे। अपनी सत्ता, अपनी ताकत को वे जानते थे। इसलिए तुरंत आग भड़क उठी। अब वह बुझनेवाली नहीं है, उसे बुझाने की जरूरत भी नहीं है। ये टुकड़े कायम नहीं रहेंगे, बंगाल फिर एक हो जाएगा। लेकिन अंग्रेजी जहाज में जो दरार पड़ी है, वह तो हमेशा रहेगी ही। वह दिन–ब–दिन चौड़ी होती जाएगी। जागा हुआ हिंद फिर सो जाए, वह नामुमकिन है। बंग–भंग को रद्द करने की माँग स्वराज की माँग के बराबर है। बंगाल के नेता यह बात खूब जानते हैं। अंग्रेजी हुकूमत भी यह बात समझती है। इसीलिए टुकड़े रद्द नहीं हुए। ज्यों–ज्यों दिन बीतते जाते हैं, त्यों–त्यों प्रजा तैयार होती जाती है। प्रजा एक दिन में नहीं बनती; उसे बनने में कई बरस लग जाते हैं।

पाठक : बंग–भंग के नतीजे आपने क्या देखे?

संपादक : आज तक हम मानते आए हैं कि बादशाह से अर्ज करना चाहिए और वैसा करने पर भी दाद न मिले तो दु:ख सहन करना चाहिए; अलबत्ता, अर्ज तो करते ही रहना चाहिए। बंगाल के टुकड़े होने के बाद लोगों ने देखा कि हमारी अर्ज के पीछे कुछ ताकत चाहिए, लोगों में कष्ट सहन करने की शक्ति चाहिए। यह नया जोश टुकड़े–टुकड़े होने का अहम नतीजा माना जाएगा। यह जोश अखबारों के लेखों में दिखाई दिया। लेख कड़े होने लगे। जो बात लोग डरते हुए या चोरी–चुपके करते थे, वह खुल्लमखुल्ला होने लगी, लिखी जाने लगी। स्वदेशी का आंदोलन[3] चला। अंग्रेजों को देखकर छोटे–बड़े सब भागते थे, पर अब नहीं डरते; मार–पीट से भी नहीं डरते; जेल जाने में भी उन्हें कोई हर्ज नहीं मालूम होता; और हिंद के पुत्ररत्न आज देश निकाला भुगतते हुए (विदेशों में) विराजमान हैं। यह चीज उस अर्ज से अलग है। यों लोगों में खलबली मच रही है। बंगाल की हवा उत्तर में पंजाब तक और (दक्षिण में) मद्रास इलाके में कन्याकुमारी तक पहुँच गई है।

पाठक : इसके अलावा और कोई जानने लायक नतीजा आपको सूझता है?

संपादक : बंग–भंग से जैसे अंग्रेजी जहाज में दरार पड़ी है, वैसे ही हममें भी दरार—फूट— पड़ी है। बड़ी घटनाओं के परिणाम[4] भी यों बड़े ही होते हैं। हमारे नेताओं में दो दल हो गए हैं:एक मॉडरेट और दूसरा एक्स्ट्रीमिस्ट। उनको हम 'धीमे' और 'उतावले' कह सकते हैं। ('नरम दल' व 'गरम दल' शब्द भी चलते हैं।) कोई मॉडरेट को डरपोक पक्ष और एक्स्ट्रीमिस्ट को हिम्मतवाला पक्ष भी कहते हैं। सब अपने–अपने खयालों के मुताबिक इन दो शब्दों का अर्थ करते हैं। यह सच है कि ये जो दल हुए हैं, उनके बीच जहर भी पैदा हुआ है। एक दल दूसरे का भरोसा नहीं करता, दोनों एक–दूसरे को ताना मारते हैं। सूरत–कांग्रेस के समय करीब–करीब मार–पीट भी हो गई। ये जो दो दल हुए हैं, वह देश के लिए अच्छी निशानी[5] नहीं है, ऐसा मुझे लगता है। लेकिन मैं यह भी मानता हूँ कि ऐसे दल लंबे अरसे तक टिकेंगे नहीं। इस तरह कब तक ये दल रहेंगे, यह तो नेताओं पर आधार रखता है।



: ३ :

अशांति और असंतोष

पाठक **:** तो आपने बंग–भंग को जागृति का कारण माना। उससे फैली हुई अशांति को ठीक समझा जाए या नहीं?

संपादक **:** इनसान नींद में से उठता है तो अँगड़ाई लेता है, इधर–उधर घूमता है और अशांत[1] रहता है। उसे पूरा भान[2] आने में कुछ वक्त लगता है। उसी तरह अगरचे बंग–भंग से जागृति आई है, फिर भी बेहोशी नहीं गई है, अभी हम अँगड़ाई लेने की हालत में है। अभी अशांति की हालत है। जैसे नींद और जाग के बीच की हालत जरूरी मानी जानी चाहिए और इसलिए वह ठीक कही जाएगी, वैसे बंगाल में और उस कारण से हिंदुस्तान में जो अशांति फैली है, वह भी ठीक है। अशांति है, यह हम जानते हैं, इसलिए शांति का समय आने की शक्यता[3] है। नींद से उठने के बाद हमेशा अँगड़ाई लेने की हालत में हम नहीं रहते, लेकिन देर–सबेर अपनी शक्ति के मुताबिक पूरे जागते ही हैं। इसी तरह इस अशांति में से हम जरूर छूटेंगे। अशांति किसी को नहीं भाती।

पाठक **:** अशांति का दूसरा रूप क्या है?

संपादक **:** अशांति असल में असंतोष है। उसे आजकल हम 'अनरेस्ट' कहते हैं। कांग्रेस के जमाने में वह 'डिस्कंटेंट' कहलाता था। मि. ह्यूम हमेशा कहते थे कि हिंदुस्तान में असंतोष फैलाने की जरूरत है। यह असंतोष बहुत उपयोगी चीज है। जब तक आदमी अपनी चालू हालत में खुश रहता है, तब तक उसमें से निकलने के लिए उसे समझाना मुश्किल है। इसलिए हर एक सुधार के पहले असंतोष होना ही चाहिए। चालू चीज से ऊब जाने पर ही उसे फेंक देने को मन करता है। ऐसा असंतोष हममें महान् हिंदुस्तानियों की और अंग्रेजों की पुस्तकें पढ़कर पैदा हुआ है। उस असंतोष से अशांति पैदा हुई; और उस अशांति में कई लोग मरे, कई बरबाद हुए, कई जेल गए, कई को देश निकाला हुआ। आगे भी ऐसा होगा और होना चाहिए। ये सब लक्षण[4] अच्छे माने जा सकते हैं। लेकिन इनका नतीजा बुरा भी आ सकता है।



: ४ :

स्वराज क्या है?

पाठक : कांग्रेस ने हिंदुस्तान को एक–राष्ट्र बनाने के लिए क्या किया, बंग–भंग से जागृति कैसे हुई, अशांति और असंतोष कैसे फैले, यह सब जाना। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि स्वराज के बारे में आपके क्या खयाल हैं। मुझे डर है कि शायद हमारी समझ में फर्क हो।

संपादक : फर्क होना मुमकिन है। स्वराज के लिए आप–हम सब अधीर बन रहे हैं, लेकिन वह क्या है, इस बारे में हम ठीक राय पर नहीं पहुँचे हैं। अंग्रेजों को निकाल बाहर करना चाहिए, यह विचार बहुतों के मुँह से सुना जाता है; लेकिन उन्हें क्यों निकालना चाहिए, इसका कोई ठीक खयाल किया गया हो, ऐसा नहीं लगता। आपसे ही एक सवाल मैं पूछता हूँ। मान लीजिए कि हम माँगते हैं, उतना सब अंग्रेज हमें दे दें, तो फिर उन्हें (यहाँ से) निकाल देने की जरूरत आप समझते हैं?

पाठक : मैं तो उनसे एक ही चीज मागूँगा। वह है:मेहरबानी करके आप हमारे मुल्क से चले जाएँ। यह माँग वे कबूल करें और हिंदुस्तान से चले जाएँ, तब भी अगर कोई ऐसा अर्थ का अनर्थ[1] करें कि वे यहीं रहते हैं, तो मुझे उसकी परवाह नहीं होगी। तब फिर हम ऐसा मानेंगे कि हमारी भाषा में कुछ लोग 'जाना' का अर्थ 'रहना' करते हैं।

संपादक : अच्छा, हम मान लें कि हमारी माँग के मुताबिक अंग्रेज चले गए। उसके बाद आप क्या करेंगे?

पाठक : इस सवाल का जवाब अभी से दिया ही नहीं जा सकता। वे किस तरह जाते हैं, उस पर बाद की हालत का आधार रहेगा। मान लें कि आप कहते हैं उस तरह वे चले गए, तो मुझे लगता है कि उनका बनाया हुआ विधान[2] हम चालू रखेंगे और राज का करोबार चलाएँगे। कहने से ही वे चले जाएँ तो हमारे पास लश्कर तैयार ही होगा, इसलिए हमें राज–काज चलाने में कोई मुश्किल नहीं आएगी।

संपादक : आप भले ही ऐसा मानें, लेकिन मैं नहीं मानूँगा। फिर भी मैं इस बात पर ज्यादा

बहस नहीं करना चाहता। मुझे तो आपके सवाल का जवाब देना है। वह जवाब मैं आपसे ही कुछ सवाल करके अच्छी तरह दे सकता हूँ। इसलिए कुछ सवाल आपसे करता हूँ। हम अंग्रेजों को क्यों निकालना चाहते हैं?

पाठक **:** इसलिए कि उनके राज–कारोबार से देश कंगाल होता जा रहा है। वे हर साल देश से धन ले जाते हैं। वे अपनी ही चमड़ी के लोगों को बड़े ओहदे देते हैं, हमें सिर्फ गुलामी में रखते हैं, हमारे साथ बेअदबी का बरताव करते हैं और हमारी जरा भी परवा नहीं करते।

संपादक **:** अगर वे धन बाहर न ले जाएँ, नम्र बन जाएँ और हमें बड़े ओहदे दें, तो उनके रहने में आपको कुछ हर्ज है?

पाठक **:** यह सवाल ही बेकार है। बाघ अपना रूप[3] पलट दे तो उसकी भाईबंदी से कोई नुकसान है? ऐसा सवाल आपने पूछा, यह सिर्फ वक्त बरबाद करने की खातिर ही। अगर बाघ अपना स्वभाव३ बदल सके, तो अंग्रेज लोग अपनी आदत छोड़ सकते हैं। जो कभी होनेवाला नहीं है, वह होगा, ऐसा मानना मनुष्य की रीत ही नहीं है।

संपादक **:** कैनेडा को जो राजसत्ता मिली है, बोअर लोगों को जो राजसत्ता मिली है, वैसी ही हमें मिले तो?

पाठक **:** यह भी बेकार सवाल है। हमारे पास उनकी तरह गोला–बारूद हो। तब वैसा जरूर हो सकता है। लेकिन उन लोगों के जितनी सत्ता जब अंग्रेज हमें देंगे तब हम अपना ही झंडा रखेंगे। जैसा जापान वैसा हिंदुस्तान। अपना जंगी बेड़ा, अपनी फौज और अपनी जाहोजलाली[4] होगी। और तभी हिंदुस्तान का सारी दुनिया में बोलबाला होगा।

संपादक **:** यह तो आपने अच्छी तसवीर खींची। इसका अर्थ यह हुआ कि हमें अंग्रेजी राज्य तो चाहिए, पर अंग्रेज (शासक) नहीं चाहिए। आप बाघ का स्वभाव तो चाहते हैं, लेकिन बाघ नहीं चाहते। मतलब यह हुआ कि आप हिंदुस्तान को अंग्रेज बनाना चाहते हैं और हिंदुस्तान जब अंग्रेज बन जाएगा तब वह हिंदुस्तान नहीं कहा जाएगा। लेकिन सच्चा इंग्लिस्तान कहा जाएगा। यह मेरी कल्पना का स्वराज नहीं है।

पाठक **:** मैंने तो जैसा मुझे सूझता है वैसा स्वराज बतलाया। हम जो शिक्षा पाते हैं वह अगर कुछ काम की हो, स्पेंसर, मिल वगैरह महान् लेखकों के जो लेख हम पढ़ते हैं वे कुछ काम के हों, अंग्रेजों की पार्लियामेंट पार्लियामेंटों की माता हो, तो फर बेशक मुझे तो लगता है कि हमें उनकी नकल करनी चाहिए; वह यहाँ तक कि जैसे वे अपने मुल्क में दूसरों को घुसने नहीं देते, वैसे ही हम भी दूसरों को न घुसने दें। यों तो उन्होंने अपने देश में जो किया है, वैसा और जगह अभी देखने में नहीं आता। इसलिए उसे तो हमें अपने देश में अपनाना ही चाहिए। लेकिन अब आप अपने विचार बतलाइए?

संपादक **:** अभी देर है। मेरे विचार अपने आप इस चर्चा में आपको मालूम हो जाएँगे। स्वराज को समझना आपको जितना आसान लगता है, उतना ही मुझे मुश्किल लगता है।

इसलिए फिलहाल मैं आपको इतना ही समझाने की कोशिश करूँगा कि जिसे आप स्वराज कहते हैं, वह सचमुच स्वराज नहीं है।

पाठक **:** कांग्रेस ने हिंदुस्तान को एक–राष्ट्र बनाने के लिए क्या किया, बंग–भंग से जागृति कैसे हुई, अशांति और असंतोष कैसे फैले, यह सब जाना। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि स्वराज के बारे में आपके क्या खयाल हैं। मुझे डर है कि शायद हमारी समझ में फर्क हो।

संपादक **:** फर्क होना मुमकिन है। स्वराज के लिए आप–हम सब अधीर बन रहे हैं, लेकिन वह क्या है, इस बारे में हम ठीक राय पर नहीं पहुँचे हैं। अंग्रेजों को निकाल बाहर करना चाहिए, यह विचार बहुतों के मुँह से सुना जाता है; लेकिन उन्हें क्यों निकालना चाहिए, इसका कोई ठीक खयाल किया गया हो, ऐसा नहीं लगता। आपसे ही एक सवाल मैं पूछता हूँ। मान लीजिए कि हम माँगते हैं, उतना सब अंग्रेज हमें दे दें, तो फिर उन्हें (यहाँ से) निकाल देने की जरूरत आप समझते हैं?

पाठक **:** मैं तो उनसे एक ही चीज मागूँगा। वह है:मेहरबानी करके आप हमारे मुल्क से चले जाएँ। यह माँग वे कबूल करें और हिंदुस्तान से चले जाएँ, तब भी अगर कोई ऐसा अर्थ का अनर्थ१ करें कि वे यहीं रहते हैं, तो मुझे उसकी परवाह नहीं होगी। तब फिर हम ऐसा मानेंगे कि हमारी भाषा में कुछ लोग 'जाना' का अर्थ 'रहना' करते हैं।

संपादक **:** अच्छा, हम मान लें कि हमारी माँग के मुताबिक अंग्रेज चले गए। उसके बाद आप क्या करेंगे?

पाठक **:** इस सवाल का जवाब अभी से दिया ही नहीं जा सकता। वे किस तरह जाते हैं, उस पर बाद की हालत का आधार रहेगा। मान लें कि आप कहते हैं उस तरह वे चले गए, तो मुझे लगता है कि उनका बनाया हुआ विधान हम चालू रखेंगे और राज का करोबार चलाएँगे। कहने से ही वे चले जाएँ तो हमारे पास लश्कर तैयार ही होगा, इसलिए हमें राज–काज चलाने में कोई मुश्किल नहीं आएगी।

संपादक **:** आप भले ही ऐसा मानें, लेकिन मैं नहीं मानूँगा। फिर भी मैं इस बात पर ज्यादा बहस नहीं करना चाहता। मुझे तो आपके सवाल का जवाब देना है। वह जवाब मैं आपसे ही कुछ सवाल करके अच्छी तरह दे सकता हूँ। इसलिए कुछ सवाल आपसे करता हूँ। हम अंग्रेजों को क्यों निकालना चाहते हैं?

पाठक **:** इसलिए कि उनके राज–कारोबार से देश कंगाल होता जा रहा है। वे हर साल देश से धन ले जाते हैं। वे अपनी ही चमड़ी के लोगों को बड़े ओहदे देते हैं, हमें सिर्फ गुलामी में रखते हैं, हमारे साथ बेअदबी का बरताव करते हैं और हमारी जरा भी परवा नहीं करते।

संपादक **:** अगर वे धन बाहर न ले जाएँ, नम्र बन जाएँ और हमें बड़े ओहदे दें, तो उनके रहने में आपको कुछ हर्ज है?

पाठक : यह सवाल ही बेकार है। बाघ अपना रूप[5] पलट दे तो उसकी भाईबंदी से कोई नुकसान है? ऐसा सवाल आपने पूछा, यह सिर्फ वक्त बरबाद करने की खातिर ही। अगर बाघ अपना स्वभाव[6] बदल सके, तो अंग्रेज लोग अपनी आदत छोड़ सकते हैं। जो कभी होनेवाला नहीं है, वह होगा, ऐसा मानना मनुष्य की रीत ही नहीं है।

संपादक : कैनेडा को जो राजसत्ता मिली है, बोअर लोगों को जो राजसत्ता मिली है, वैसी ही हमें मिले तो?

पाठक : यह भी बेकार सवाल है। हमारे पास उनकी तरह गोला–बारूद हो। तब वैसा जरूर हो सकता है। लेकिन उन लोगों के जितनी सत्ता जब अंग्रेज हमें देंगे तब हम अपना ही झंडा रखेंगे। जैसा जापान वैसा हिंदुस्तान। अपना जंगी बेड़ा, अपनी फौज और अपनी जाहोजलाली होगी। और तभी हिंदुस्तान का सारी दुनिया में बोलबाला होगा।

संपादक : यह तो आपने अच्छी तसवीर खींची। इसका अर्थ यह हुआ कि हमें अंग्रेजी राज्य तो चाहिए, पर अंग्रेज (शासक) नहीं चाहिए। आप बाघ का स्वभाव तो चाहते हैं, लेकिन बाघ नहीं चाहते। मतलब यह हुआ कि आप हिंदुस्तान को अंग्रेज बनाना चाहते हैं और हिंदुस्तान जब अंग्रेज बन जाएगा तब वह हिंदुस्तान नहीं कहा जाएगा। लेकिन सच्चा इंग्लिस्तान कहा जाएगा। यह मेरी कल्पना का स्वराज नहीं है।

पाठक : मैंने तो जैसा मुझे सूझता है वैसा स्वराज बतलाया। हम जो शिक्षा पाते हैं वह अगर कुछ काम की हो, स्पेंसर, मिल वगैरह महान् लेखकों के जो लेख हम पढ़ते हैं वे कुछ काम के हों, अंग्रेजों की पार्लियामेंट पार्लियामेंटों की माता हो, तो फर बेशक मुझे तो लगता है कि हमें उनकी नकल करनी चाहिए; वह यहाँ तक कि जैसे वे अपने मुल्क में दूसरों को घुसने नहीं देते, वैसे ही हम भी दूसरों को न घुसने दें। यों तो उन्होंने अपने देश में जो किया है, वैसा और जगह अभी देखने में नहीं आता। इसलिए उसे तो हमें अपने देश में अपनाना ही चाहिए। लेकिन अब आप अपने विचार बतलाइए?

संपादक : अभी देर है। मेरे विचार अपने आप इस चर्चा में आपको मालूम हो जाएँगे। स्वराज को समझना आपको जितना आसान लगता है, उतना ही मुझे मुश्किल लगता है। इसलिए फिलहाल मैं आपको इतना ही समझाने की कोशिश करूँगा कि जिसे आप स्वराज कहते हैं, वह सचमुच स्वराज नहीं है।



: ५ :

इंग्लैंड की हालत

पाठक **:** आप जो कहते हैं, उस पर से तो मैं यही अंदाज लगाता हूँ कि इंग्लैंड में जो राज्य चलता है वह ठीक नहीं है और हमारे लायक नहीं है।

संपादक **:** आपका यह खयाल सही है। इंग्लैंड में आज जो हालत है, वह सचमुच दयनीय, तरस खाने लायक है। मैं तो भगवान् से यही माँगता हूँ कि हिंदुस्तान की ऐसी हालत कभी न हो। जिसे आप पार्लियामेंटो की माता कहते हैं, वह पार्लियामेंट तो बाँझ और बेसवा[1] है। ये दोनों शब्द बहुत कड़े हैं, तो भी उसे अच्छी तरह लागू होते हैं। मैंने उसे बाँझ कहा, क्योंकि अब तक उस पार्लियामेंट ने अपने आप एक भी अच्छा काम नहीं किया। अगर उस पर जोर–दबाव डालनेवाला कोई न हो तो वह कुछ भी न करे, ऐसी उसकी कुदरती हालात है। और वह बेसवा है, क्योंकि जो मंत्रि–मंडल उसे रखे उसके पास वह रहती है। आज उसका मालिक एस्क्विथ है, तो कल बालफर होगा और परसों कोई तीसरा।

पाठक **:** आपके बोलने में कुछ व्यंग्य[2] है। बाँझ शब्द को अब तक आपने लागू नहीं किया। पार्लियामेंट लोगों की बनी है, इसलिए बेशक लोगों के दबाव से ही वह काम करेगी। वही उसका गुण[3] है, उसके ऊपर का अंकुश[4] है।

संपादक **:** यह बड़ी गलत बात है। अगर पार्लियामेंट बाँझ न हो तो इस तरह होना चाहिए —लोग उसमें अच्छे–से–अच्छे मेंबर चुनकर भेजते हैं। मेंबर तनख्वाह नहीं लेते, इसलिए उन्हें लोगों की भलाई के लिए (पार्लियामेंट में) जाना चाहिए। लोग खुद सुशिक्षित–संस्कारी[5] माने जाते हैं, इसलिए उनसे भूल नहीं होती। ऐसा हमें मानना चाहिए। ऐसी पार्लियामेंट को अरजी की जरूरत नहीं होनी चाहिए, न दबाव की। उस पार्लियामेंट का काम इतना सरल होना चाहिए कि दिन–ब–दिन उसका तेज बढ़ता जाए और लोगों पर उसका असर होता जाए। लेकिन इससे उलटे इतना तो सब कबूल करते हैं कि पार्लियामेंट के मेंबर दिखावटी और स्वार्थी[6] पाए जाते हैं। सब अपना मतलब साधने की सोचते हैं।

सिर्फ डरके कारण ही पार्लियामेंट कुछ काम करती है। जो काम आज किया वह कल उसे रद्द करना पड़ता है। आज तक एक भी चीज को पार्लियामेंट ने ठिकाने लगाया हो, ऐसी कोई मिसाल देखने में नहीं आती। बड़े सवालों की चर्चा जब पार्लियामेंट में चलती है, तब उसके मेंबर पैर फैलाकर लेटते हैं या बैठे–बैठे झपकियाँ लेते हैं। उस पार्लियामेंट में मेंबर इतने जोरों से चिल्लाते हैं कि सुननेवाले हैरान–परेशान हो जाते हैं। उसके एक महान् लेखक ने उसे 'दुनिया की बातूनी' जैसा नाम दिया है। मेंबर जिस पक्ष[7] अगर कोई मेंबर इसमें अपवादरूप[8] निकल आए, तो उसकी कमबख्ती ही समझिए। जितना समय और पैसा पार्लियामेंट खर्च करती है उतना समय और पैसा अगर अच्छे लोगों को मिले तो प्रजा का उद्धार[9] हो जाए। ब्रिटिश पार्लियामेंट महज प्रजा का खिलौना है और वह खिलौना प्रजा को भारी खर्च में डालता है। ये विचार मेरे खुद के हैं। ऐसा आप न मानें। बड़े और विचारशील अंग्रेज ऐसा विचार रखते हैं। एक मेंबर ने तो यहाँ तक कहा है कि पार्लियामेंट धर्मिष्ठ[10] आदमी के लायक नहीं रही। दूसरे मेंबर ने तो कहा है कि पार्लियामेंट एक 'बच्चा' (बेबी) है। बच्चों को कभी आपने हमेशा बच्चे ही रहते देखा है? आज सात सौ बरस के बाद भी अगर पार्लियामेंट बच्चा ही हो, तो वह बड़ी कब होगी?

पाठक **:** आपने मुझे सोच में डाल दिया। यह सब मुझे तुरंत मान लेना चाहिए, ऐसा तो आप नहीं कहेंगे। आप बिलकुल निराले विचार मेरे मन में पैदा कर रहे हैं। मुझे उन्हें हजम करना होगा। अच्छा, अब 'बेसवा' शब्द का विवेचन[11] कीजिए?

संपादक **:** मेरे विचारों को आप तुरंत नहीं मान सकते, यह बात ठीक है। उसके बारे में आपको जो साहित्य पढ़ना चाहिए वह आप पढ़ेंगे, तो आपको कुछ खयाल आएगा। पार्लियामेंट को मैंने बेसवा कहा, वह भी ठीक है। उसका कोई मालिक नहीं है। उसका कोई एक मालिक नहीं हो सकता। लेकिन मेरे कहने का मतलब इतना ही नहीं है। जब कोई उसका मालिक बनता है—जैसे प्रधानमंत्री—तब भी उसकी चाल एक सरीखी नहीं रहती। जैसे बुरे हाल[12] बेसवा के होते हैं, वैसे ही सदा पार्लियामेंट के होते हैं। प्रधानमंत्री को पार्लियामेंट की थोड़ी ही परवाह रहती है। वह तो अपनी सत्ता के मद में मस्त रहता है। अपना दल कैसे जीते, इसी की लगन उसे रहती है। पार्लियामेंट सही काम कैसे करे, इसका वह बहुत कम विचार करता है। अपने दल को बलवान बनाने के लिए प्रधानमंत्री पार्लियामेंट से कैसे–कैसे काम करवाता है, इसकी मिसालें जितनी चाहिए उतनी मिल सकती हैं। यह सब सोचने लायक है।

पाठक **:** तब तो आज तक जिन्हें हम देशाभिमानी[13] और ईमानदार समझते आए हैं, उन पर भी आप टूट पड़ते हैं?

संपादक **:** हाँ, यह सच है। मुझे प्रधानमंत्रियों से द्वेष[14] नहीं है। लेकिन तजुरबे से मैंने देखा है कि वे सच्चे देशाभिमानी नहीं कहे जा सकते। जिसे हम घूस कहते हैं, वह घूस वे खुल्लमखुल्ला नहीं लेते–देते, इसलिए भले ही वे ईमानदार कहे जाएँ। लेकिन उनके पास बसीला[15] काम कर सकता है। वे दूसरों से काम निकालने के लिए उपाधि[16] वगैरह की घूस

बहुत देते हैं। मैं हिम्मत के साथ कह सकता हूँ कि उनमें शुद्ध भावना और सच्ची ईमानदारी नहीं होती।

पाठक **:** जब आपके ऐसे खयाल हैं तो जिन अंग्रेजों के नाम से पार्लियामेंट राज करती है, उनके बारे में अब कुछ कहिए, ताकि उनके स्वराज्य का पूरा खयाल मुझे आ जाए।

संपादक **:** जो अंग्रेज 'वोटर' हैं (चुनाव करते हैं), उनकी धर्म–पुस्तक (बाइबल) तो है अखबार। वे अखबारों से अपने विचार बनाते हैं। अखबार अप्रामाणिक[17] होते हैं, एक ही बात को दो शक्लें देते हैं। एक दलवाले उसी बात को बड़ी बनाकर दिखलाते हैं, तो दूसरे दलवाले उसी को छोटी कर डालते हैं। एक अखबारवाला किसी अंग्रेज नेता को प्रामाणिक[18] मानेगा, तो दूसरा अखबारवाला उसको अप्रामाणिक मानेगा। जिस देश में ऐसे अखबार हैं, उस देश के आदमियों की कैसी दुर्दशा होगी?

पाठक **:** यह तो आप ही बताइए।

संपादक **:** उन लोगों के विचार घड़ी–घड़ी में बदलते हैं। उन लोगों में यह कहावत है कि सात–सात बरस में रंग बदलता है। घड़ी के लोलक की तरह वे इधर–उधर घूमा करते हैं। जमकर वे बैठ ही नहीं सकते। कोई दौर–दमामवाला आदमी हो और उसने अगर बड़ी–बड़ी बातें कर दीं या दावतें दे दीं, तो वे नक्कारची की तरह उसी के ढोल पीटने लग जाते हैं। ऐसे लोगों की पार्लियामेंट भी ऐसी ही होती है। उनमें एक बात जरूर है, वह यह कि वे अपने देश को खोएँगे नहीं। अगर किसी ने उस पर बुरी नजर डाली, तो वे उसकी मिट्टी पलीद कर देंगे। लेकिन इससे उस प्रजा में सब गुण आ गए, या उस प्रजा की नकल की जाए, ऐसा नहीं कह सकते। अगर हिंदुस्तान अंग्रेज प्रजा की नकल करे तो हिंदुस्तान पामाल हो जाए, ऐसा मेरा पक्का खयाल है।

पाठक **:** अंग्रेज प्रजा ऐसी हो गई है, इसके आप क्या कारण मानते हैं?

संपादक **:** इसमें अंग्रेजों का कोई खास कसूर नहीं है, पर उनकी—बल्कि यूरोप की—आजकल की सभ्यता का कसूर है। वह सभ्यता नुकसान–देह है और उससे यूरोप की प्रजा पामाल होती जा रही है।



: ६ :

सभ्यता का दर्शन

पाठक **:** अब तो आपको सभ्यता[1] की भी बात करनी होगी। आपके हिसाब से तो यह सभ्यता बिगाड़ करनेवाली है।

संपादक **:** मेरे हिसाब से ही नहीं, बल्कि अंग्रेज लेखकों के हिसाब से भी यह सभ्यता बिगाड़ करने वाली है। उसके बारे में बहुत किताबें लिखी गई हैं। वहाँ इस सभ्यता के खिलाफ मंडल भी कायम हो रहे हैं। एक लेखक ने 'सभ्यता, उसके कारण और उसकी दवा' नाम की किताब लिखी है। उसमें उसने यह साबित किया है कि यह सभ्यता एक तरह का रोग है।

पाठक **:** यह सब हम क्यों नहीं जानते?

संपादक **:** इसका कारण तो साफ है। कोई भी आदमी अपने खिलाफ जाने वाली बात करे, ऐसा शायद ही होता है। आज की सभ्यता के मोह में फँसे हुए लोग उसके खिलाफ नहीं लिखेंगे, उलटे उसको सहारा मिले, ऐसी ही बातें और दलीलें ढूँढ़ निकालेंगे। यह वे जान–बूझकर करते हैं, ऐसा भी नहीं है। वे जो लिखते हैं, उसे खुद सच मानते हैं। नींद में आदमी जो सपना देखता है, उसे वह सही मानता है। जब उसकी नींद खुलती है तभी उसे अपनी गलती मालूम होती है। ऐसी ही दशा सभ्यता के मोह में फँसे हुए आदमी की होती है। हम जो बातें पढ़ते हैं, वे सभ्यता की हिमायत करनेवालों की लिखी बातें होती हैं। उनमें बहुत होशियार और भले आदमी हैं। उनके लेखों से हम चौंधिया जाते हैं। यों एक के बाद दूसरा आदमी उसमें फँसता जाता है।

पाठक **:** यह बात आपने ठीक कही। अब आपने जो कुछ पढ़ा और सोचा है, उसका खयाल मुझे दीजिए।

संपादक **:** पहले तो हम यह सोचें कि सभ्यता किस हालत का नाम है। इस सभ्यता की सही पहचान तो यह है कि लोग बाहरी (दुनिया) की खोजों में और शरीर के सुख में धन्यता–सार्थकता[2] और पुरुषार्थ[3] मानते हैं। इसकी कुछ मिसालें लें। सौ साल पहले यूरोप के लोग

जैसे घरों में रहते थे, उनसे ज्यादा अच्छे घरों में आज वे रहते हैं; यह सभ्यता की निशानी मानी जाती है। इसमें शरीर के सुख की बात है। इसके पहले लोग चमड़े के कपड़े पहनते थे और भालों का इस्तेमाल करते थे। अब वे लंबे पतलून पहनते हैं और शरीर को सजाने के लिए तरह–तरह के कपड़े बनवाते हैं; और भाले के बदले एक के बाद एक पाँच गोलियाँ छोड़ सकें, ऐसी चक्करवाली बंदूक इस्तेमाल करते हैं। यह सभ्यता की निशानी है। किसी मुल्क के लोग, जो जूते वगैरह नहीं पहनते हों, जब यूरोप के कपड़े पहनना सीखते हैं, तो जंगली हालत में से सभ्य हालत में आए हुए माने जाते हैं। पहले यूरोप में लोग मामूली हल की मदद से अपने लिए जात–मेहनत करके जमीन जोतते थे। उसकी जगह आज भाप के यंत्रों से हल चलाकर एक आदमी बहुत सारी जमीन जोत सकता है और बहुत सा पैसा जमा कर सकता है। यह सभ्यता की निशानी मानी जाती है। पहले लोग कुछ ही किताबें लिखते थे और वे अनमोल मानी जाती थीं। आज हर कोई चाहे जो लिखता है व छपवाता है और लोगों के मन को भरमाता है। यह सभ्यता की निशानी है। पहले लोग बैलगाड़ी से रोज बारह कोस की मंजिल तय करते थे। आज रेलगाड़ी से चार सौ कोस की मंजिल मारते हैं। यह तो सभ्यता की चोटी[4] मानी गई है। यह सभ्यता जैसे–जैसे आगे बढ़ती जाती है वैसे–वैसे यह सोचा जाता है कि लोग हवाई जहाज से सफर करेंगे और थोड़े ही घंटों में दुनिया के किसी भी भाग[5] में जा पहुँचेंगे। लोगों को हाथ–पैर हिलाने की जरूरत नहीं रहेगी। एक बटन दबाया कि आदमी के सामने पहनने की पोशाक हाजिर हो जाएगी, दूसरा बटन दबाया कि उसे अखबार मिल जाएँगे, तीसरा दबाया कि उसके लिए गाड़ी तैयार हो जाएगी; उसे हमेशा नए भोजन मिलेंगे, हाथ–पैर का काम ही नहीं पड़ेगा, सारा काम कल[6] से ही किया जाएगा। पहले जब लोग लड़ना चाहते थे तो एक–दूसरे का शरीर–बल आजमाते थे। आज तो तोप के एक गोले से हजारों जानें ली जा सकती हैं। यह सभ्यता की निशानी है। पहले लोग खुली हवा में अपने को ठीक लगे, उतना काम स्वतंत्रता से करते थे। अब हजारों आदमी अपने गुजारे के लिए इकट्ठा होकर बड़े कारखानों में या खानों में काम करते हैं। उनकी हालत जानवर से भी बदतर हो गई है। उन्हें सीसे वगैरह के कारखानों में जान को जोखिम में डालकर काम करना पड़ता है। इसका लाभ पैसेदार लोगों को मिलता है। पहले लोगों को मार–पीटकर गुलाम बनाया जाता था; आज लोगों को पैसे का और भोग[7] का लालच देकर गुलाम बनाया जाता है। पहले जैसे रोग नहीं थे वैसे रोग आज लोगों में पैदा हो गए हैं और उसके साथ डॉक्टर खोज करने लगे हैं कि ये रोग कैसे मिटाए जाएँ। ऐसा करने से अस्पताल बढ़े हैं। यह सभ्यता की निशानी मानी जाती है। पहले लोग पत्र लिखते थे तब खास कासिद उसे ले जाता था और उसके लिए काफी खर्च लगता था। आज मुझे किसी को गालियाँ देने के लिए पत्र लिखना हो, तो एक पैसे में मैं गालियाँ दे सकता हूँ। यह सभ्यता की निशानी है। पहले लोग दो या तीन बार खाते थे और वह भी खुद हाथ से पकाई हुई रोटी और थोड़ी तरकारी। अब तो हर दो घंटे पर खाना चाहिए, और वह यहाँ तक कि लोगों को खाने से फुरसत ही नहीं मिलती। और कितना कहूँ? यह सब आप किसी भी पुस्तक में पढ़ सकते हैं। ये सब सभ्यता की सच्ची निशानियाँ मानी जाती हैं। और अगर कोई भी इससे भिन्न बात समझाए, तो वह भोला है, ऐसा निश्चय[8] ही मानिए। सभ्यता तो मैंने जो बताई, वही मानी जाती है। उसमें नीति या धर्म की बात ही नहीं है। सभ्यता के

हिमायती साफ कहते हैं कि उनका काम लोगों को धर्म सिखाने का नहीं है। धर्म तो ढोंग है, ऐसा कुछ लोग मानते हैं। और कुछ लोग धर्म का दंभ करते हैं, नीति की बातें भी करते हैं। फिर भी मैं आपसे बीस बरस के अनुभव[9] के बाद कहता हूँ कि नीति के नाम से अनीति सिखलाई जाती है। ऊपर की बातों में नीति हो ही नहीं सकती, यह कोई बच्चा भी समझ सकता है। शरीर का सुख कैसे मिले, यही आज की सभ्यता ढूँढ़ती है और यही देने की वह कोशिश करती है। परंतु वह सुख भी नहीं मिल पाता।

यह सभ्यता तो अधर्म है और यह यूरोप में इतने दरजे तक फैल गई है कि वहाँ के लोग आधे पागल जैसे देखने में आते हैं। उनमें सच्ची कूबत नहीं है; वे नशा करके अपनी ताकत कायम रखते हैं। एकांत[10] में वे बैठ ही नहीं सकते। जो स्त्रियाँ घर की रानियाँ होनी चाहिए, उन्हें गलियों में भटकना पड़ता है, या कोई मजदूरी करनी पड़ती है। इंग्लैंड में ही चालीस लाख गरीब औरतों को पेट के लिए सख्त मजदूरी करनी पड़ती है और आजकल इसके कारण ‘सफ्रेजेट’ का आंदोलन[11] चल रहा है।

यह सभ्यता ऐसी है कि अगर हम धीरज धरकर बैठे रहेंगे, तो सभ्यता की चपेट में आए हुए लोग खुद की जलाई हुई आग में जल मरेंगे। पैगंबर मोहम्मद साहब की सीख के मुताबिक यह शैतानी सभ्यता है। हिंदू धर्म इसे निरा ‘कलजुग’ कहता है। मैं आपके सामने इस सभ्यता का हू–ब–हू चित्र नहीं खींच सकता। यह मेरी शक्ति के बाहर है। लेकिन आप समझ सकेंगे कि इस सभ्यता के कारण अंग्रेज प्रजा में सड़न ने घर कर लिया है। यह सभ्यता दूसरों का नाश करने वाली और खुद नाशवान है। इससे दूर रहना चाहिए और इसीलिए ब्रिटिश तथा दूसरी पार्लियामेंटें बेकार हो गई हैं। ब्रिटिश पार्लियामेंट अंग्रेज प्रजा की गुलामी की निशानी है, यह पक्की बात है। आप पढ़ेंगे और सोचेंगे तो आपको भी ऐसा ही लगेगा। इसमें आप अंग्रेजों का दोष[12] न निकालें। उन पर तो हमें दया आनी चाहिए। वे काबिल प्रजा हैं, इसलिए किसी दिन उस जाल से निकल जाएँगे। ऐसा मैं मानता हूँ। वे साहसी और मेहनती हैं। मूल में उनके विचार अनीति भरे नहीं हैं, इसलिए उनके बारे में मेरे मन में उत्तम[13] खयाल ही है। उनका दिल बुरा नहीं है। यह सभ्यता उनके लिए कोई अमिट रोग नहीं है। लेकिन अभी वे उस रोग में फँसे हुए हैं, यह तो हमें भूलना ही नहीं चाहिए।



: ७ :

हिंदुस्तान कैसे गया?

पाठक : आपने सभ्यता के बारे में बहुत कुछ कहा और मुझे विचार में डाल दिया। अब तो मैं इस संकट[1] में आ पड़ा हूँ कि यूरोप की प्रजा से मैं क्या लूँ और क्या न लूँ! लेकिन एक सवाल मेरे मन में तुरंत उठता है, अगर आज की सभ्यता बिगाड़ करने वाली है, एक रोग है, तो ऐसी सभ्यता में फँसे हुए अंग्रेज हिंदुस्तान को कैसे ले सके? इसमें वे कैसे रह सकते हैं?

संपादक : आपके इस सवाल का जवाब कुछ आसानी से दिया जा सकेगा और अब थोड़ी देर में हम स्वराज के बारे में भी विचार कर सकेंगे। आपके इस सवाल का जवाब अभी देना बाकी है, यह मैं भूला नहीं हूँ। लेकिन आपके आखिरी सवाल पर हम आएँ। हिंदुस्तान अंग्रेजों ने लिया, सो बात नहीं है, बल्कि हमने उन्हें दिया। हिंदुस्तान में वे अपने बल से नहीं टिके हैं, बल्कि हमने उन्हें टिका रखा है। वह कैसे, सो देखें। आपको मैं याद दिलाता हूँ कि हमारे देश में वे दरअसल व्यापार के लिए आए थे। आप अपने कंपनी बहादुर को याद कीजिए। उसे बहादुर किसने बनाया? वे बेचारे तो राज करने का इरादा भी नहीं रखते थे। कंपनी के लोगों की मदद किसने की? उनकी चाँदी को देखकर कौन मोह में पड़ जाता था? उनका माल कौन बेचता था? इतिहास[2] सबूत देता है कि यह सब हम ही करते थे। जल्दी पैसा पाने के मतलब से हम उनका स्वागत करते थे। हम उनकी मदद करते थे। मुझे भाँग पीने की आदत हो और भाँग बेचनेवाला मुझे भाँग बेचे, तो कसूर बेचनेवाले का निकालना चाहिए या अपना खुद का? बेचनेवाले का कसूर निकालने से मेरा व्यसन[3] थोड़े ही मिटने वाला है? एक बेचनेवाले को भगा देंगे तो क्या दूसरे मुझे भाँग नहीं बेचेंगे? हिंदुस्तान के सच्चे सेवक को अच्छी तरह खोज करके इसकी जड़ तक पहुँचना होगा। ज्यादा खाने से अगर मुझे अजीर्ण[4] हुआ हो, तो मैं पानी का दोष निकालकर अजीर्ण दूर नहीं कर सकूँगा। सच्चा डॉक्टर तो वह है जो रोग की जड़ खोजे। आप अगर हिंदुस्तान के रोग के डॉक्टर होना चाहते हैं, तो आपको रोग की जड़ खोजनी ही पड़ेगी।

पाठक : आप सच कहते हैं। अब मुझे समझाने के लिए आपको दलील करने की जरूरत नहीं

रहेगी। मैं आपके विचार जानने के लिए अधीर बन गया हूँ। अब हम बहुत ही दिलचस्प विषय[5] पर आ गए हैं, इसलिए मुझे आप अपने ही विचार बताएँ। जब उनके बारे में शंका पैदा होगी, तब मैं आपको रोकूँगा।

संपादक : बहुत अच्छा। पर मुझे डर है कि आगे चलने पर हमारे बीच फिर से मतभेद जरूर होगा। फिर भी जब आप मुझे रोकेंगे, तभी मैं दलील में उतरूँगा। हमने देखा कि अंग्रेज व्यापारियों को हमने बढ़ावा दिया, तभी वे हिंदुस्तान में अपने पैर फैला सके। वैसे ही जब हमारे राजा लोग आपस में झगड़े तब उन्होंने कंपनी बहादुर से मदद माँगी। कंपनी बहादुर व्यापार और लड़ाई के काम में कुशल[6] थे। उसमें उसे नीति–अनीति की अड़चन नहीं थी। व्यापार बढ़ाना और पैसा कमाना, यही उसका धंधा था। उसमें जब हमने मदद दी, तब उसने हमारी मदद ली और अपनी कोठियाँ बढ़ाईं। कोठियों का बचाव करने के लिए उसने लश्कर रखा। उस लश्कर का हमने उपयोग किया, इसलिए अब उसे दोष देना बेकार है। उस वक्त हिंदू–मुसलमानों के बीच बैर था। कंपनी को उससे मौका मिला। इस तरह हमने कंपनी के लिए ऐसे संजोग पैदा किए, जिससे हिंदुस्तान पर उसका अधिकार हो जाए। इसलिए हिंदुस्तान गया, ऐसा कहने के बजाय ज्यादा सच यह कहना होगा कि हमने हिंदुस्तान अंग्रेजों को दिया।

पाठक : अब अंगे्रज हिंदुस्तान को कैसे रख सकते हैं, सो कहिए।

संपादक : जैसे हमने हिंदुस्तान उन्हें दिया, वैसे ही हम हिंदुस्तान को उनके पास रहने देते हैं। उन्होंने तलवार से हिंदुस्तान लिया, ऐसा उनमें से कुछ कहते हैं और ऐसा भी कहते हैं कि तलवार से वे उसे रख रहे हैं। ये दोनों बातें गलत हैं। हिंदुस्तान को रखने के लिए तलवार किसी काम में नहीं आ सकती; हम खुद ही उन्हें यहाँ रहने देते हैं।

नेपोलियन ने अंग्रेजों को व्यापारी प्रजा कहा है। वह बिलकुल ठीक बात है। वे जिस देश को (अपने काबू में) रखते हैं, उसे व्यापार के लिए रखते हैं, यह जानने लायक है। उनकी फौजें और जंगी बेड़े सिर्फ व्यापार की रक्षा[7] के लिए हैं। जब ट्रांसवाल में व्यापार का लालच नहीं था तब मि. ग्लेडस्टन को तुरंत सूझ गया कि ट्रांसवाल अंग्रेजों को नहीं रखना चाहिए। जब ट्रांसवाल में व्यापार का आकर्षण देखा तब उससे लड़ाई की गई और मि. चेंबरलेन ने यह ढूँढ़ निकाला कि ट्रांसवाल पर अंग्रेजों की हुकूमत है। मरहूम प्रेसिडेंट क्रूगर से किसी ने सवाल किया—'चाँद में सोना है या नहीं?' उसने जवाब दिया—'चाँद में सोना होने की संभावना नहीं है, क्योंकि सोना होता तो अंग्रेज अपने राज के साथ उसे जोड़ देते।' पैसा उनका खुदा है, यह ध्यान में रखने से सब बातें साफ हो जाएँगी।

तब अंग्रेजों को हम हिंदुस्तान में सिर्फ अपनी गरज से रखते हैं। हमें उनका व्यापार पसंद आता है। वे चालबाजी करके हमें रिझाते हैं और रिझाकर हमसे काम लेते हैं। इसमें उनका दोष निकालना उनकी सत्ता को निभाने जैसा है। इसके अलावा हम आपस में झगड़कर उन्हें ज्यादा बढ़ावा देते हैं।

अगर आप ऊपर की बात को ठीक समझते हैं, तो हमने यह साबित कर दिया कि अंग्रेज व्यापार के लिए यहाँ आए, व्यापार के लिए यहाँ रहते हैं और उनके रहने में हम ही मददगार हैं। उनके हथियार तो बिलकुल बेकार हैं।

इस मौके पर मैं आपको याद दिलाता हूँ कि जापान में अंग्रेजी झंडा लहराता है, ऐसा आप मानिए। जापान के साथ अंग्रेजों ने जो करार किया है, वह अपने व्यापार के लिए किया है। और आप देखेंगे कि जापान में अंग्रेज लोग अपना व्यापार खूब जमाएँगे। अंग्रेज अपने माल के लिए सारी दुनिया को अपना बाजार बनाना चाहते हैं। यह सच है कि ऐसा वे नहीं कर सकेंगे। इसमें उनका कोई कसूर नहीं माना जा सकता। अपनी कोशिश में वे कोई कसर नहीं रखेंगे।



: ८ :

हिंदुस्तान की दशा—१

पाठक : हिंदुस्तान अंग्रेजों के हाथ में क्यों है, यह समझा जा सकता है। अब मैं हिंदुस्तान की हालत के बारे में आपके विचार जानना चाहता हूँ।

संपादक : आज हिंदुस्तान की रंक[1] दशा है। यह आप से कहते हुए मेरी आँखों में पानी भर जाता है और गला सूख जाता है। यह बात मैं आपको पूरी तरह समझा सकूँगा या नहीं, इस बारे में मुझे शक है। मेरी पक्की राय है कि हिंदुस्तान अंग्रेजों से नहीं, बल्कि आजकल की सभ्यता[2] से कुचला जा रहा है, उसकी चपेट में वह फँस गया है। उसमें से बचने का अभी भी उपाय है, लेकिन दिन–ब–दिन समय बीतता जा रहा है। मुझे तो धर्म प्यारा है; इसलिए पहला दु:ख मुझे यह है कि हिंदुस्तान धर्मभ्रष्ट होता जा रहा है। धर्म का अर्थ मैं यहाँ हिंदू, मुसलिम या जरथोस्ती धर्म नहीं करता। लेकिन इन सब धर्मों के अंदर जो 'धर्म' है, वह हिंदुस्तान से जा रहा है; हम ईश्वर से विमुख[3] होते जा रहे हैं।

पाठक : सो कैसे?

संपादक : हिंदुस्तान पर यह तोहमत है कि हम आलसी हैं और गोरे लोग मेहनती और उत्साही[4] हैं। इसे हमने मान लिया है। इसलिए हम अपनी हालत को बदलना चाहते हैं।

हिंदू, मुसलिम, जरथोस्ती, ईसाई सब धर्म सिखाते हैं कि हमें दुनियावी बातों के बारे में मंद[5] और धार्मिक[6] बातों के बारे में उत्साही रहना चाहिए। हमें अपने दुनियावी लोभ की हद बाँधनी चाहिए और धार्मिक लोभ को खुला छोड़ देना चाहिए। हमारा उत्साह[7] धार्मिक लोभ में ही रहना चाहिए।

पाठक : इससे तो मालूम होता है कि आप पाखंडी[8] बनने की तालीम देते हैं। धर्म के बारे में ऐसी बातें करके ठग लोग दुनिया को ठगते आए हैं और आज भी ठग रहे हैं।

संपादक : आप धर्म पर गलत आरोप[9] लगाते हैं। पाखंड तो सब धर्मों में है। जहाँ सूरज है वहाँ अँधेरा रहता ही है। परछाईं हर एक चीज के साथ जुड़ी रहती है। धार्मिक ठगों को आप दुनियावी ठगों से अच्छे पाएँगे। सभ्यता में जो पाखंड मैं आपको बता चुका हूँ, वैसा पाखंड धर्म में मैंने कभी नहीं देखा।

पाठक : यह कैसे कहा जा सकता है? धर्म के नाम पर हिंदू–मुसलमान लड़े, धर्म के नाम पर ईसाइयों में बड़े–बड़े युद्ध हुए। धर्म के नाम पर हजारों बेगुनाह लोग मारे गए, उन्हें जला दिया गया, उन पर बड़ी–बड़ी मुसीबतें गुजारी गईं। यह तो सभ्यता से बदतर ही माना जाएगा।

संपादक : तो मैं कहूँगा कि यह सब सभ्यता के दु:ख से ज्यादा बरदाश्त हो सकने जैसा है। आपने जो कुछ कहा, वह पाखंड है, ऐसा सब लोग समझते हैं। इसलिए पाखंड में फँसे हुए लोग मर गए कि सारा सवाल हल हो गया। जहाँ भोले लोग हैं, वहाँ ऐसा ही चलता रहेगा। लेकिन उसका असर हमेशा के लिए बुरा नहीं रहता। सभ्यता की होली में जो लोग जल मरे हैं, उनकी तो कोई हद ही नहीं है। उसकी खूबी यह है कि लोग उसे अच्छा मानकर उसमें कूद पड़ते हैं। फिर वे न तो रहते दीन के और न रहते दुनिया के। वे सच बात को बिलकुल भूल जाते हैं। सभ्यता चूहे की तरह फूँककर काटती है। उसका असर जब हम जानेंगे तब पुराने वहम मुकाबले में हमें मीठे लगेंगे। मेरा कहना यह नहीं कि हमें उन वहमों को कायम रखना चाहिए। नहीं, उनके खिलाफ तो हम लड़ेंगे ही; लेकिन वह लड़ाई धर्म को भूलकर नहीं लड़ी जाएगी, बल्कि सही तौर धर्म को समझकर और उसकी रक्षा करके लड़ी जाएगी।

पाठक : तब तो आप यह भी कहेंगे कि अंग्रेजों ने हिंदुस्तान में शांति का जो सुख हमें दिया है, वह बेकार है?

संपादक : आप भले शांति देखते हों, पर मैं तो शांति का सुख नहीं देखता।

पाठक : तब तो ठग, पिंडारी, भील वगैरह देश में जो त्रास[10] गुजारते थे, उसमें आपके खयाल से कोई बुराई नहीं थी?

संपादक : आप जरा सोचेंगे तो मालूम होगा कि उनका त्रास बहुत कम था। अगर सचमुच उनका त्रास भयंकर होता, तो प्रजा का जड़मूल से कभी का नाश हो जाता। और हाल की शांति तो नाम की ही है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि इस शांति से हम नामर्द, नपुंसक और डरपोक बन गए हैं। भीलों और पिंडारियों का स्वभाव अंग्रेजों ने बदल दिया है, ऐसा हम न मान लें। हम पर ऐसा जुल्म होता हो तो हमें उसे बरदाश्त करना चाहिए। लेकिन दूसरे लोग हमें उस जुल्म से बचावें, यह तो हमारे लिए बिलकुल कलंक[11] जैसा है। हम कमजोर और डरपोक बनें, इससे तो भीलों के तीर–कमान से मरना मुझे ज्यादा पसंद है। उस हालत में जो हिंदुस्तान था, उसका जोश कुछ दूसरा ही था। मैकॉले ने हिंदुस्तानियों को नामर्द माना, वह उसकी अधम अज्ञान दशा को बताता है। हिंदुस्तानी नामर्द कभी नहीं थे। यह जान लीजिए कि जिस देश में पहाड़ी लोग बसते हैं, जहाँ बाघ–भेड़िए रहते हैं, उस देश के

रहनेवाले अगर सचमुच डरपोक हों तो उनका नाश ही हो जाए। आप कभी खेतों में गए हैं? मैं आपसे यकीनन कहता हूँ कि खेतों में हमारे किसान आज भी निर्भय[12] होकर सोते हैं, जबकि अंग्रेज और आप वहाँ सोने के लिए आनाकानी करेंगे। बल तो निर्भयता में है; बदन पर [13] मांस के लोंदे होने में बल नहीं है। आप थोड़ा भी सोचेंगे तो इस बात को समझ जाएँगे।

और आपको, जो स्वराज चाहनेवाले हैं, मैं सावधान[14] करता हूँ कि भील, पिंडारी और ठग ये सब हमारे ही देशी भाई हैं। उन्हें जीतना मेरा और आपका काम है। जब तक आपके ही भाई का डर आपको रहेगा, तब तक आप कभी मकसद हासिल नहीं कर सकेंगे।



: ९ :

हिंदुस्तान की दशा—२ रेलगाड़ियाँ

पाठक : हिंदुस्तान की शांति के बारे में मेरा जो मोह था, वह आपने ले लिया। अब तो याद नहीं आता कि आपने मेरे पास कुछ भी रहने दिया हो!

संपादक : अब तक तो मैंने आपको सिर्फ धर्म की दशा का ही खयाल कराया है। लेकिन हिंदुस्तान रंक[1] क्यों है, इस बारे में मैं अपने विचार आपको बताऊँगा तब तो शायद आप मुझसे नफरत ही करेंगे; क्योंकि आज तक हमने और आपने जिन चीजों को लाभकारी माना है, वे मुझे तो नुकसानदेह ही मालूम होती हैं।

पाठक : वे क्या हैं?

संपादक : हिंदुस्तान को रेलों ने, वकीलों ने और डॉक्टरों ने कंगाल बना दिया है। यह एक ऐसी हालत है कि अगर हम समय पर नहीं चेतेंगे, तो चारों ओर से घिरकर बरबाद हो जाएँगे।

पाठक : मुझे डर है कि हमारे विचार कभी मिलेंगे या नहीं! आपने तो जो कुछ अच्छा देखने में आया है और अच्छा माना गया है, उसी पर धावा बोल दिया है! अब बाकी क्या रहा?

संपादक : आपको धीरज रखना होगा। सभ्यता नुकसान करने वाली कैसे है, यह तो मुश्किल से मालूम हो सकता है। डॉक्टर आपको बतलाएँगे कि क्षय का मरीज मौत के दिन तक भी जीने की आशा रखता है। क्षय का रोग बाहर दिखाई देने वाली हानि नहीं पहुँचाता और वह रोग आदमी को झूठी लाली देता है। इससे बीमार विश्वास में बहता रहता है और आखिर डूब जाता है। सभ्यता का भी ऐसा ही समझिए। वह एक अदृश्य[2] रोग है। उससे चेत कर रहिए।

पाठक : अच्छा, तो अब आप रेल–पुराण सुनाइए?

संपादक **:** आपके दिल में यह बात तुरंत उठेगी कि अगर रेल न हो तो अंग्रेजों का काबू हिंदुस्तान पर जितना है उतना तो नहीं ही रहेगा। रेल से महामारी फैली है। अगर रेलगाड़ी न हो तो कुछ ही लोग एक जगह से दूसरी जगह जाएँगे और इस कारण संक्रामक[3] रोग सारे देश में नहीं पहुँच पाएँगे। पहले हम कुदरती तौर पर ही 'सेग्रेगेशन'—सूतक—पालते थे। रेल से अकाल बढ़े हैं, क्योंकि रेलगाड़ी की सुविधा[4] के कारण लोग अपना अनाज बेच डालते हैं। जहाँ महँगाई हो, वहाँ अनाज खिंच जाता है, लोग लापरवाह बनते हैं और उससे अकाल का दु:ख बढ़ता है। रेल से दुष्टता[5] बढ़ती है। बुरे लोग अपनी बुराई तेजी से फैला सकते हैं। हिंदुस्तान में जो पवित्र[6] स्थान थे, वे अपवित्र[7] बन गए हैं। पहले लोग बड़ी मुसीबत से वहाँ जाते थे। ऐसे लोग वहाँ सच्ची भावना से ईश्वर को भजने जाते थे; अब तो ठगों की टोली सिर्फ ठगने के लिए वहाँ जाती है।

पाठक **:** यह तो आपने इकतरफा बात कही। जैसे खराब लोग वहाँ जा सकते हैं वैसे अच्छे भी तो जा सकते हैं। वे क्यों रेलगाड़ी का पूरा लाभ नहीं लेते?

संपादक **:** जो अच्छा होता है वह बीरबहूटी की तरह धीरे चलता है। उसकी रेल से नहीं बनती। अच्छा करनेवाले के मन में स्वार्थ नहीं रहता। वह जल्दी नहीं करेगा। वह जानता है कि आदमी पर अच्छी बात का असर डालने में बहुत समय लगता है। बुरी बात ही तेजी से बढ़ सकती है। घर बनाना मुश्किल है, तोड़ना सरल है। इसलिए रेलगाड़ी हमेशा दुष्टता का ही फैलाव करेगी, यह बराबर समझ लेना चाहिए। उससे अकाल फैलेगा या नहीं, इस बारे में कोई शास्त्रकार मेरे मन में घड़ी भर शंका पैदा कर सकता है; लेकिन रेल से दुष्टता बढ़ती है यह बात जो मेरे मन में जम गई है, वह मिटनेवाली नहीं है।

पाठक **:** लेकिन रेल का सबसे बड़ा लाभ दूसरे सब नुकसानों को भुला देता है। रेल है तो आज हिंदुस्तान में एक–राष्ट्र का जोश देखने में आता है। इसलिए मैं तो कहूँगा कि रेल के आने से कोई नुकसान नहीं हुआ।

संपादक **:** यह आपकी भूल ही है। आपको अंग्रेजों ने सिखाया है कि आप एक–राष्ट्र नहीं थे और एक–राष्ट्र बनने में आपको सैकड़ों बरस लगेंगे। यह बात बिलकुल बेबुनियाद है। जब अंग्रेज हिंदुस्तान में नहीं थे तब हम एक–राष्ट्र थे, हमारे विचार एक थे, हमारा रहन–सहन एक था। तभी तो अंग्रेजों ने यहाँ एक–राज्य कायम किया। भेद तो हमारे बीच बाद में उन्होंने पैदा किए।

पाठक **:** यह बात मुझे ज्यादा समझनी होगी।

संपादक **:** मैं जो कहता हूँ वह बिना सोचे–समझे नहीं कहता। एक–राष्ट्र का यह अर्थ नहीं कि हमारे बीच कोई मतभेद नहीं था; लेकिन हमारे मुख्य लोग पैदल या बैलगाड़ी में हिंदुस्तान का सफर करते थे, वे एक–दूसरे की भाषा सीखते थे और उनके बीच कोई अंतर नहीं था। जिन दूरदर्शी[8] पुरुषों ने सेतुबंध रामेश्वरम, जगन्नाथपुरी और हरिद्वार की यात्रा ठहराई[9], उनका आपकी राय में क्या खयाल होगा? वे मूर्ख नहीं थे, यह तो आप कबूल

करेंगे। वे जानते थे कि ईश्वर–भजन घर बैठे भी होता है। उन्होंने हमें यह सिखाया है कि मन चंगा तो कठौती में गंगा। लेकिन उन्होंने सोचा कि कुदरत ने हिंदुस्तान को एक–देश बनाया है, इसलिए वह एक–राष्ट्र होना चाहिए। इसलिए उन्होंने अलग–अलग स्थान तय करके लोगों को एकता का विचार इस तरह दिया, जैसा दुनिया में और कहीं नहीं दिया गया है। दो अंग्रेज जितने एक नहीं हैं उतने हम हिंदुस्तानी एक थे और एक हैं। सिर्फ हम और आप, जो खुद को सभ्य मानते हैं, उन्हीं के मन में ऐसा आभास (भ्रम) पैदा हुआ कि हिंदुस्तान में हम अलग–अलग राष्ट्र हैं। रेल के कारण हम अपने को अलग राष्ट्र मानने लगे और रेल के कारण एक–राष्ट्र का खयाल फिर से हमारे मन में आने लगा, ऐसा आप मानें तो मुझे हर्ज नहीं है। अफीमची कह सकता है कि अफीम के नुकसान का पता मुझे अफीम से चला, इसलिए अफीम अच्छी चीज है। यह सब आप अच्छी तरह सोचिए। अभी आपके मन में और भी शंकाएँ उठेंगी। लेकिन आप खुद उन सबको हल कर सकेंगे।

पाठक **:** आपने जो कुछ कहा, उस पर मैं सोचूँगा। लेकिन एक सवाल मेरे मन में इसी समय उठता है। मुसलमान हिंदुस्तान में आए, उसके पहले के हिंदुस्तान की बात आपने की। लेकिन अब तो मुसलमानों, पारसियों, ईसाइयों की हिंदुस्तान में बड़ी संख्या है। वे एक–राष्ट्र नहीं हो सकते। कहा जाता है कि हिंदू–मुसलामनों में कट्टर बैर है। हमारी कहावतें भी ऐसी ही हैं। 'मियाँ और महादेव की नहीं बनेगी।' हिंदू पूर्व में ईश्वर को पूजता है, तो मुसलिम पश्चिम में पूजता है। मुसलमान हिंदू को बुतपरस्त—मूर्तिपूजक—मानकर उससे नफरत करता है। हिंदू मूर्तिपूजक है, मुसलमान मूर्ति को तोड़नेवाला है। हिंदू गाय को पूजता है, मुसलमान उसे मारता है। हिंदू अहिंसक है, मुसलमान हिंसक। यों पग–पग पर जो विरोध[10] है, वह कैसे मिटे और हिंदुस्तान एक कैसे हो?



: १० :

हिंदुस्तान की दशा—३ हिंदू–मुसलमान

संपादक : आपका आखिरी सवाल बड़ा गंभीर मालूम होता है। लेकिन सोचने पर वह सरल मालूम होगा। यह सवाल उठा है, उसका कारण भी रेल, वकील और डॉक्टर हैं। वकीलों और डॉक्टरों का विचार तो अभी करना बाकी है। रेलों का विचार हम कर चुके। इतना मैं जोड़ता हूँ कि मनुष्य इस तरह पैदा किया गया है कि अपने हाथ–पैर से बने, उतनी ही आने–जाने वगैरह की हलचल उसे करनी चाहिए। अगर हम रेल वगैरह साधनों से दौड़धूप करें ही नहीं, तो बहुत पेचीदे सवाल हमारे सामने आएँगे ही नहीं। हम खुद दुःखी होकर दुःख को न्योतते हैं। भगवान् ने मनुष्य की हद उसके शरीर की बनावट से ही बाँध दी, लेकिन मनुष्य ने उस बनावट की हद को लाँघने के उपाय[1] ढूँढ़ निकाले। मनुष्य को अक्ल इसलिए दी गई है कि उसकी मदद से वह भगवान् को पहचाने। पर मनुष्य ने अक्ल का उपयोग भगवान् को भूलने में किया। मैं अपनी कुदरती हद के मुताबिक अपने आस–पास रहनेवालों की ही सेवा कर सकता हूँ; पर मैंने तुरंत अपनी मगरूरी में ढूँढ़ निकाला कि मुझे तो सारी दुनिया की सेवा अपने तन से करनी चाहिए। ऐसा करने में अनेक धर्मों के और कई तरह के लोगों का साथ होगा। यह बोझ मनुष्य उठा ही नहीं सकता और इसलिए अकुलाता है। इस विचार से आप समझ लेंगे कि रेलगाड़ी सचमुच एक तूफानी साधन है। मनुष्य रेलगाड़ी का उपयोग करके भगवान् को भूल गया है।

पाठक : पर मैं तो अब जो सवाल मैंने उठाया है, उसका जवाब सुनने को अधीर हो रहा हूँ। मुसलमानों के आने से हमारा एक–राष्ट्र रहा या मिटा?

संपादक : हिंदुस्तान में चाहे जिस धर्म के आदमी रह सकते हैं; उससे वह एक–राष्ट्र मिटनेवाला नहीं है। जो नए लोग उसमें दाखिल होते हैं, वे उसकी प्रजा को तोड़ नहीं सकते, वे उसकी प्रजा में घुल–मिल जाते हैं। ऐसा हो, तभी कोई मुल्क एक–राष्ट्र माना जाएगा। ऐसे मुल्क में दूसरे लोगों का समावेश करने का गुण होना चाहिए। हिंदुस्तान ऐसा था और आज भी है। यों तो जितने आदमी उतने धर्म ऐसा मान सकते हैं। एक–राष्ट्र होकर

रहनेवाले लोग एक–दूसरे के धर्म में दखल नहीं देते; अगर देते हैं तो समझना चाहिए कि वे एक–राष्ट्र होने लायक नहीं हैं। अगर हिंदू माने कि सारा हिंदुस्तान सिर्फ हिंदुओं से भरा होना चाहिए, तो यह एक निरा सपना है। मुसलमान अगर ऐसा मानें कि उसमें सिर्फ मुसलमान ही रहें, तो उसे भी सपना ही समझिए। फिर भी हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, जो इस देश को अपना वतन मानकर बस चुके हैं, एक–देशी, एक–मुल्की हैं, वे देशी–भाई हैं, और उन्हें एक–दूसरे के स्वार्थ के लिए भी एक होकर रहना पड़ेगा।

दुनिया के किसी भी हिस्से में एक–राष्ट्र का अर्थ एक–धर्म नहीं किया गया है; हिंदुस्तान में तो ऐसा था ही नहीं।

पाठक **:** लेकिन दोनों कौमों के कट्टर बैर का क्या?

संपादक **:** 'कट्टर बैर' शब्द दोनों के दुश्मन ने खोज निकाला है। जब हिंदू–मुसलमान झगड़ते थे तब वे ऐसी बातें भी करते थे। झगड़ा तो हमारा सबका बंद हो गया है। फिर कट्टर बैर काहे का? और इतना याद रखिए कि अंग्रेजों के आने के बाद ही हमारा झगड़ा बंद हुआ, ऐसा नहीं है। हिंदू लोग मुसलमान बादशाहों के मातहत और मुसलमान हिंदू राजाओं के मातहत रहते आए हैं। दोनों को बाद में समझ में आ गया कि झगड़ने से कोई फायदा नहीं; लड़ाई से दोनों अपना धर्म नहीं छोड़ेंगे और कोई अपनी जिद भी नहीं छोड़ेंगे। इसलिए दोनों ने मिलकर रहने का फैसला किया। झगड़े तो फिर से अंग्रेजों ने शुरू करवाए।

'मियाँ और महादेव की नहीं बनती' इस कहावत को भी ऐसा ही समझिए। कुछ कहावतें हमेशा के लिए रह जाती हैं और नुकसान करती ही रहती हैं। हम कहावत की धुन में इतना भी याद नहीं रखते कि बहुतेरे हिंदुओं और मुसलमानों के बाप–दादे एक ही थे, हमारे अंदर एक ही खून है। क्या धर्म बदला। इसलिए हम आपस में दुश्मन बन गए? धर्म तो एक ही जगह पहुँचने के अलग–अलग रास्ते हैं। हम दोनों अलग–अलग रास्ते लें, इससे क्या हो गया? उसमें लड़ाई काहे की?

और ऐसी कहावतें तो शैवों और वैष्णवों में भी चलती हैं; पर इससे कोई यह नहीं कहेगा कि वे एक–राष्ट्र नहीं हैं। वेदधर्मियों और जैनों के बीच बहुत फर्क माना जाता है, फिर भी इससे वे अलग राष्ट्र नहीं बन जाते। हम गुलाम हो गए हैं, इसीलिए अपने झगड़े हम तीसरे के पास ले जाते हैं।

जैसे मुसलमान मूर्ति का खंडन करनेवाले हैं, वैसे हिंदुओं में भी मूर्ति का खंडन करनेवाला एक वर्ग देखने में आता है। ज्यों–ज्यों सही ज्ञान बढ़ेगा, त्यों–त्यों हम समझते जाएँगे कि हमें पसंद न आने वाला धर्म दूसरा आदमी पालता हो, तो भी उससे बैरभाव रखना हमारे लिए ठीक नहीं; हम उस पर जबरदस्ती न करें।

पाठक **:** अब गोरक्षा के बारे में अपने विचार बताइए?

संपादक **:** मैं खुद गाय को पूजता हूँ यानी मान देता हूँ। गाय हिंदुस्तान की रक्षा करनेवाली

है, क्योंकि उसकी संतान पर हिंदुस्तान का, जो खेती–प्रधान देश है, आधार है। गाय कई तरह से उपयोगी जानवर है। वह उपयोगी जानवर है, यह तो मुसलमान भाई भी कबूल करेंगे।

लेकिन जैसे मैं गाय को पूजता हूँ वैसे मैं मनुष्य को भी पूजता हूँ। जैसे गाय उपयोगी है वैसे मनुष्य भी—फिर चाहे वह मुसलमान हो या हिंदू—उपयोगी है। तब क्या गाय को बचाने के लिए मैं मुसलमान से लड़ूँगा? क्या उसे मैं मारूँगा? ऐसा करने से मैं मुसलमान का और गाय का भी दुश्मन बनूँगा। इसलिए मैं कहूँगा कि गाय की रक्षा करने का एक यही उपाय है कि मुझे अपने मुसलमान भाई के सामने हाथ जोड़ने चाहिए और उसे देश की खातिर गाय को बचाने के लिए समझाना चाहिए। अगर वह न समझे तो मुझे गाय को मरने देना चाहिए, क्योंकि वह मेरे बस की बात नहीं। अगर मुझे गाय पर अत्यंत[2] दया आती हो तो अपनी जान दे देनी चाहिए, लेकिन मुसलमान की जान नहीं लेनी चाहिए। वही धार्मिक कानून है, ऐसा मैं मानता हूँ।

'हाँ' और 'नहीं' के बीच हमेशा बैर रहता है। अगर मैं वाद–विवा[13] करूँगा, तो मुसलमान भी वाद–विवाह करेगा। अगर मैं टेढ़ा बनूँगा, तो वह भी टेढ़ा बनेगा। अगर मैं बालिश्त भर नमूँगा, तो वह हाथ भर नमेगा और अगर वह नहीं भी नमे, तो मेरा नमना गलत नहीं कहलाएगा। जब हमने जिद की तब गोकशी बढ़ी। मेरी राय है कि गोरक्षा प्रचारिणी सभा गोवध प्रचारिणी सभा मानी जानी चाहिए। ऐसी सभा का होना हमारे लिए बदनामी की बात है। जब गाय की रक्षा करना हम भूल गए, तब ऐसी सभा की जरूरत पड़ी होगी।

मेरा भाई गाय को मारने दौड़े, तो मैं उसके साथ कैसा बरताव करूँगा? उसे मारूँगा या उसके पैरों में पड़ूँगा? अगर आप कहें कि मुझे उसके पाँव पड़ना चाहिए, तो मुझे मुसलमान भाई के भी पाँव पड़ना चाहिए।

गाय को दु:ख देकर हिंदू गाय का वध करता है; इससे गाय को कौन छुड़ाता है? जो हिंदू गाय की औलादक[4] को पैना (आर) भोंकता है, उस हिंदू को कौन समझाता है? इससे हमारे एक–राष्ट्र होने में कोई रुकावट नहीं आई है।

अंत में हिंदू अहिंसक और मुसलमान हिंसक है, यह बात अगर सही हो तो अहिंसक का धर्म क्या है? अहिंसक को आदमी की हिंसा करनी चाहिए, ऐसा कहीं लिखा नहीं है। अहिंसक के लिए तो राह सीधी है। उसे एक को बचाने के लिए दूसरे की हिंसा करनी ही नहीं चाहिए। उसे तो मात्र चरण–वंदना करनी चाहिए, सिर्फ समझाने का काम करना चाहिए। इसी में उसका पुरुषार्थ[5] है।

लेकिन क्या तमाम हिंदू अहिंसक हैं? सवाल की जड़ में जाकर विचार करने पर मालूम होता है कि कोई भी अहिंसक नहीं है, क्योंकि जीव को तो हम मारते ही हैं। लेकिन इस हिंसा से हम छूटना चाहते हैं, इसलिए अहिंसक (कहलाते) हैं। साधारण विचार करने से मालूम होता है कि बहुत से हिंदू मांस खानेवाले हैं, इसलिए वे अहिंसक नहीं माने जा

सकते। खींच–तानकर दूसरा अर्थ करना हो तो मुझे कुछ कहना नहीं है। जब ऐसी हालत है तब मुसलमान हिंसक और हिंदू अहिंसक हैं, इसलिए दोनों की नहीं बनेगी, यह सोचना बिलकुल गलत है।

ऐसे विचार स्वार्थी धर्मशिक्षकों, शास्त्रियों और मुल्लाओं ने हमें दिए हैं। और इसमें जो कमी रह गई थी, उसे अंग्रेजों ने पूरा किया है। उन्हें इतिहास लिखने की आदत है; हर एक जाति के रीति–रिवाज जानने का वे दंभ[6] भरते हैं। ईश्वर ने हमारा मन तो छोटा बनाया है, फिर भी वे ईश्वरी दावा करते आए हैं और तरह–तरह के प्रयोग[7] करते हैं। वे अपने बाजे खुद बजाते हैं और हमारे मन में अपनी बात सही होने का विश्वास जमाते हैं। हम भोलेपन में उस सब पर भरोसा कर लेते हैं।

जो टेढ़ा नहीं देखना चाहते, वे देख सकेंगे कि कुरान–शरीफ में ऐसे सैकड़ों वचन हैं, जो हिंदुओं को मान्य[8] हों; भगवद्गीता में ऐसी बातें लिखी हैं कि जिनके खिलाफ मुसलमान को कोई भी एतराज नहीं हो सकता। कुरान–शरीफ का कुछ भाग मैं न समझ पाऊँ या कुछ भाग मुझे पसंद न आए, इस वजह से क्या मैं उसे माननेवाले से नफरत करूँ? झगड़ा दो से ही हो सकता है। मुझे झगड़ा नहीं करना हो, तो मुसलमान क्या करेगा? और मुसलमान को झगड़ा न करना हो, तो मैं क्या कर सकता हूँ? हवा में हाथ उठानेवाले का हाथ उखड़ जाता है। सब अपने–अपने धर्म का स्वरूप समझकर उससे चिपके रहें और शास्त्रियों व मुल्लाओं को बीच में न आने दें, तो झगड़े का मुँह हमेशा के लिए काला ही रहेगा।

पाठक **:** अंग्रेज दोनों कौमों का मेल होने देंगे?

संपादक **:** यह सवाल डरपोक आदमी का है। यह सवाल हमारी हीनता को दिखाता है। अगर दो भाई चाहते हों कि उनका आपस में मेल बना रहे, तो कौन उनके बीच में आ सकता है? अगर तीसरा आदमी दोनों के बीच झगड़ा पैदा कर सके, तो उन भाइयों को हम कच्चे दिल के कहेंगे। उसी तरह अगर हम—हिंदू और मुसलमान—कच्चे दिल के होंगे, तो फिर अंग्रेजों का कसूर निकालना बेकार होगा। कच्चा घड़ा एक कंकड़ से नहीं तो दूसरे कंकड़ से फूटेगा ही। घड़े को बचाने का रास्ता यह नहीं है कि उसे कंकड़ से दूर रखा जाए, बल्कि यह है कि उसे पक्का बनाया जाए, जिससे कंकड़ का भय ही न रहे। उसी तरह हमें पक्के दिल का बनना है। हम दोनों में से कोई एक (भी) पक्के दिल के होंगे, तो तीसरे की कुछ नहीं चलेगी। यह काम हिंदू आसानी से कर सकते हैं। उनकी संख्या बड़ी है, वे अपने को ज्यादा पढ़े–लिखे मानते हैं; इसलिए वे पक्का दिल रख सकते हैं।

दोनों कौमों के बीच अविश्वास[9] है, इसलिए मुसलमान लॉर्ड मॉर्ले से कुछ हक माँगते हैं। इसमें हिंदू क्यों विरोध करें? अगर हिंदू विरोध न करें, तो अंग्रेज चौंकेंगे। मुसलमान धीरे–धीरे हिंदुओं का भरोसा करने लगेंगे और दोनों का भाईचारा बढ़ेगा। अपने झगड़े अंग्रेजों के पास ले जाने में हमें शरमाना चाहिए। ऐसा करने से हिंदू कुछ खोने वाले नहीं हैं; इसका हिसाब आप खुद लगा सकेंगे। जिस आदमी ने दूसरे पर विश्वास किया, उसने आज तक कुछ खोया नहीं है।

मैं यह नहीं कहना चाहता कि हिंदू–मुसलमान कभी झगड़ेंगे ही नहीं। दो भाई साथ रहें तो उनके बीच तकरार होती है। कभी हमारे सिर भी फूटेंगे। ऐसा होना जरूरी नहीं है, लेकिन सब लोग एक सी अक्ल के नहीं होते। दोनों जोश में आते हैं तब अकसर गलत काम कर बैठते हैं। उन्हें हमें सहन करना होगा। लेकिन ऐसी तकरार को भी बड़ी वकालत बघारकर हम अंग्रेजों की अदालत में न ले जाएँ। दो आदमी लड़ें, लड़ाई में दोनों के सिर या एक का सिर फूटे, तो उसमें तीसरा क्या न्याय करेगा? जो लड़ेंगे, वे जख्मी भी होंगे। बदन से बदन टकराएगा तब कुछ निशानी तो रहेगी ही। उसमें न्याय क्या हो सकता है?



: ११ :

हिंदुस्तान की दशा—४ वकील

पाठक **:** आप कहते हैं कि दो आदमी झगड़ें, तब उसका न्याय भी नहीं कराना चाहिए। यह तो आपने अजीब बात कही?

संपादक **:** इसे अजीब कहिए या दूसरा कोई विशेषण[1] लगाइए, पर बात सही है। आपकी शंका हमें वकील–डॉक्टरों की पहचान कराती है। मेरी राय है कि वकीलों ने हिंदुस्तान को गुलाम बनाया है, हिंदू–मुसलमानों के झगड़े बढ़ाए हैं और अंग्रेजी हुकूमत को यहाँ मजबूत किया है।

पाठक **:** ऐसे इलजाम लगाना आसान है, लेकिन उन्हें साबित करना मुश्किल होगा। वकीलों के सिवा दूसरा कौन हमें आजादी का मार्ग बताता? उनके सिवा गरीबों का बचाव कौन करता? उनके सिवा कौन हमें न्याय दिलाता? देखिए, स्व. मनमोहन घोष ने कितनों को बचाया? खुद एक कौड़ी भी उन्होंने नहीं ली। कांग्रेस, जिसके आपने ही बखान किए हैं, वकीलों से निभती है और उनकी मेहनत से ही उसमें काम होते हैं। इस वर्ग[2] की आप निंदा करें, यह इनसाफ के साथ गैर–इनसाफ करने जैसा है। यह तो आपके हाथ में अखबार आया। इसलिए चाहे जो बोलने की छूट लेने जैसा लगता है।

संपादक **:** जैसा आप मानते हैं, वैसा ही मैं भी एक समय मानता था। वकीलों ने कभी कोई अच्छा काम नहीं किया, ऐसा मैं आपसे नहीं कहना चाहता। मि. मनमोहन घोष की मैं इज्जत करता हूँ। उन्होंने गरीबों की मदद की थी। यह बात सही है। कांग्रेस में वकीलों ने कुछ काम किया है, यह भी हम मान सकते हैं। वकील भी आखिर मनुष्य हैं और मनुष्य जाति में कुछ तो अच्छाई है ही। वकीलों की भलमनसी के जो बहुत से किस्से देखने में आते हैं, वे तभी हुए जब वे अपने को वकील समझना भूल गए। मुझे तो आपको सिर्फ यही दिखाना है कि उनका धंधा उन्हें अनीति सिखानेवाला है। वे बुरे लालच में फँसते हैं, जिसमें से उबरनेवाले बिरले ही होते हैं।

हिंदू–मुसलमान आपस में लड़े हैं। तटस्थ[3] आदमी उनसे कहेगा कि आप गई–बीती को भूल जाएँ; इसमें दोनों का कसूर रहा होगा। अब दोनों मिलकर रहिए। लेकिन वे वकील के पास जाते हैं। वकील का फर्ज हो जाता है कि वह मुवक्किल की ओर जोर लगाए। मुवक्किल के खयाल में भी न हों ऐसी दलीलें मुवक्किल की ओर से ढूँढ़ना वकील का काम है। अगर वह ऐसा नहीं करता तो माना जाएगा कि वह अपने पेशे को बट्टा लगाता है। इसलिए वकील तो आमतौर पर झगड़ा आगे बढ़ाने की ही सलाह देगा।

लोग दूसरों का दुःख दूर करने के लिए नहीं, बल्कि पैसा पैदा करने के लिए वकील बनते हैं। वह एक कमाई का रास्ता है। इसलिए वकील का स्वार्थ झगड़ा बढ़ाने में है। यह तो मेरी जानी हुई बात है कि जब झगड़े होते हैं तब वकील खुश होते हैं। मुखतार लोग भी वकील की जात के हैं। जहाँ झगड़े नहीं होते, वे वहाँ भी झगड़े खड़े करते हैं। उनके दलाल जोंक की तरह गरीब लोगों से चिपकते हैं और उनका खून चूस लेते हैं। यह पेशा ऐसा है कि इसमें आदमियों को झगड़े के लिए बढ़ावा मिलता ही है। वकील लोग निठल्ले होते हैं। आलसी लोग ऐश–आराम करने के लिए वकील बनते हैं, यह सही बात है। वकालत का पेशा बड़ा आबरूदार पेशा है, ऐसा खोज निकालनेवाले भी वकील ही हैं। कानून वे बनाते हैं, उसकी तारीफ भी वे ही करते हैं। लोगों से क्या दाम लिये जाएँ, यह भी वे ही तय करते हैं; और लोगों पर रोब जमाने के लिए आडंबर[4] ऐसा करते हैं, मानो वे आसमान से उतरकर आए हुए देवदूत[5] हों!

वे मजदूर से ज्यादा रोजी क्यों माँगते हैं? उनकी जरूरतें मजदूर से ज्यादा क्यों हैं? उन्होंने मजदूर से ज्यादा देश का क्या भला किया है? क्या भला करनेवाले को ज्यादा पैसा लेने का हक है? और अगर पैसे की खातिर उन्होंने भला किया हो, तो उसे भला कैसे कहा जाए? यह तो उस पेशे का जो गुण है वह मैंने बताया।

वकीलों के कारण हिंदू–मुसलमानों के बीच कुछ दंगे हुए हैं, यह तो जिन्हें अनुभव है वे जानते होंगे। उनमें कुछ खानदान बरबाद हो गए हैं। उनकी बदौलत भाइयों में जहर दाखिल हो गया है। कुछ रियासतें वकीलों के जाल में फँसकर कर्जदार हो गई हैं। बहुत से गरासिए[6] इन वकीलों की कारस्तानी से लुट गए हैं। ऐसी बहुत सी मिसालें दी जा सकती हैं।

लेकिन वकीलों से बड़े–से–बड़ा नुकसान तो यह हुआ है कि अंग्रेजों का जुआ हमारी गरदन पर मजबूत जम गया है। आप सोचिए, क्या आप मानते हैं कि अंग्रेजी अदालतें यहाँ न होतीं तो वे हमारे देश में राज कर सकते थे? ये अदालतें लोगों के भले के लिए नहीं हैं। जिन्हें अपनी सत्ता कायम रखनी है, वे अदालतों के जरिए लोगों को वश में रखते हैं। लोग अगर खुद अपने झगड़े निबटा लें, तो तीसरा आदमी उन पर अपनी सत्ता नहीं जमा सकता। सचमुच जब लोग खुद मार–पीट करके या रिश्तेदारों को पंच बनाकर अपना झगड़ा निबटा लेते थे, तब वे बहादुर थे। अदालतें आईं और वे कायर बन गए। लोग आपस में लड़कर झगड़े मिटाएँ, यह जंगली माना जाता था। अब तीसरा आदमी झगड़ा मिटाता है, यह क्या

कम जंगलीपन है? क्या कोई ऐसा कह सकेगा कि तीसरा आदमी जो फैसला देता है, वह सही फैसला ही होता है? कौन सच्चा है, यह दोनों पक्ष के लोग जानते हैं। हम भोलेपन में मान लेते हैं कि तीसरा आदमी हमसे पैसे लेकर हमारा इनसाफ करता है।

इस बात को अलग रखें। हकीकत तो यही दिखानी है कि अंग्रेजों ने अदालतों के जरिए हम पर अंकुश जमाया है और अगर हम वकील न बनें तो ये अदालतें चल ही नहीं सकतीं। अगर अंग्रेज ही जज होते, अंग्रेज ही वकील होते और अंग्रेज ही सिपाही होते, तो वे सिर्फ अंग्रेजों पर ही राज करते। हिंदुस्तानी जज और हिंदुस्तानी वकील के बगैर उनका काम चल नहीं सका। वकील कैसे पैदा हुए, उन्होंने कैसी धाँधली मचाई, यह सब अगर आप समझ सकें, तो मेरे जितनी ही नफरत आपको भी इस पेशे के लिए होगी। अंग्रेजी सत्ता की एक मुख्[7] कुंजी उनकी अदालतें हैं और अदालतों की कुंजी वकील हैं। अगर वकील वकालत करना छोड़ दें और वह पेशा वेश्या के पेशे जैसा नीच माना जाए, तो अंग्र्रेजी राज एक दिन में टूट जाए। वकीलों ने हिंदुस्तानी प्रजा पर यह तोहमत लगवाई है कि हमें झगड़े प्यारे हैं और हम कोर्ट–कचहरी रूपी पानी की मछलियाँ हैं। जो शब्द मैं वकीलों के लिए इस्तेमाल करता हूँ, वे ही शब्द जजों पर भी लागू होते हैं। वे दोनों मौसेरे भाई हैं और एक–दूसरे को बल देनेवाले हैं।



: १२ :

हिंदुस्तान की दशा—५ डॉक्टर

पाठक : वकीलों की बात तो हम समझ सकते हैं। उन्होंने जो अच्छा काम किया है, वह जान–बूझकर नहीं किया, ऐसा यकीन होता है। बाकी उनके धंधे को देखा जाए तो वह कनिष्ठ[1] ही हैं। लेकिन आप तो डॉक्टरों को भी उनके साथ घसीटते हैं। यह कैसे?

संपादक : मैं जो विचार आपके सामने रखता हूँ, वे इस समय तो मेरे अपने ही हैं। लेकिन ऐसे विचार मैंने ही व्यक्त किए हैं, सो बात नहीं। पश्चिम के सुधारक खुद मुझसे ज्यादा सख्त शब्दों में इन धंधों के बारे में लिख गए हैं। उन्होंने वकीलों और डॉक्टरों की बहुत निंदा की है। उनमें से एक लेखक ने एक जहरी पेड़ का चित्र खींचा है, वकील–डॉक्टर वगैरह निकम्मे धंधेवालों को उसकी शाखाओं के रूप में बताया है और उस पेड़ के तने पर नीति–धर्म की कुल्हाड़ी उठाई है। अनीति को इन सब धंधों की जड़ बताया है। इससे आप यह समझ लेंगे कि मैं आपके सामने अपने दिमाग से निकाले हुए नए विचार नहीं रखता, लेकिन दूसरों का और अपना अनुभव आपके सामने

रखता हूँ।

डॉक्टरों के बारे में जैसे आपको अभी मोह है वैसे कभी मुझे भी था। एक समय ऐसा था जब मैंने खुद डॉक्टर होने का इरादा किया था और सोचा था कि डॉक्टर बनकर कौम की सेवा करूँगा। मेरा यह मोह अब मिट गया है। हमारे समाज में वैद्य का धंधा कभी अच्छा माना ही नहीं गया, इसका भान अब मुझे हुआ है; और उस विचार की कीमत मैं समझ सकता हूँ।

अंग्र्ेजों ने डॉक्टरी विद्या से भी हम पर काबू जमाया है। डॉक्टरों में दंभ की भी कमी नहीं है। मुगल बादशाह को भरमानेवाला एक अंग्रेज डॉक्टर ही था। उसने बादशाह के घर में कुछ बीमारी मिटाई, इसलिए उसे सिरोपाव मिला। अमीरों के पास पहुँचनेवाले भी डॉक्टर ही हैं।

डॉक्टरों ने हमें जड़ से हिला दिया है। डॉक्टरों से नीम–हकीम ज्यादा अच्छे, ऐसा कहने का मेरा मन होता है। इस पर हम कुछ विचार करें।

डॉक्टरों का काम सिर्फ शरीर को सँभालने का है; या शरीर को सँभालने का भी नहीं है। उनका काम शरीर में जो रोग पैदा होते हैं, उन्हें दूर करने का है। रोग क्यों होते हैं? हमारी ही गफलत से। मैं बहुत खाऊँ और मुझे बदहज्मी, अजीर्ण हो जाए; फिर मैं डॉक्टर के पास जाऊँ और वह मुझे गोली दे; गोली खाकर मैं चंगा हो जाऊँ और दुबारा खूब खाऊँ और फिर से गोली लूँ। अगर मैं गोली न लेता तो अजीर्ण की सजा भुगतता और फिर से बेहद नहीं खाता। डॉक्टर बीच में आया और उसने हद से ज्यादा खाने में मेरी मदद की। उससे मेरे शरीर को आराम हुआ, लेकिन मेरा मन कमजोर बना। इस तरह आखिर मेरी यह हालत होगी कि मैं अपने मन पर जरा भी काबू न रख सकूँगा।

मैंने विलास किया, मैं बीमार पड़ा; डॉक्टर ने मुझे दवा दी और मैं चंगा हुआ। क्या मैं फिर से विलास नहीं करूँगा? जरूर करूँगा। अगर डॉक्टर बीच में न आता तो कुदरत अपना काम करती, मेरा मन मजबूत बनता और अंत में निर्विषयी[2] होकर मैं सुखी होता।

अस्पताल पाप की जड़ हैं। उनकी बदौलत लोग शरीर का जतन कम करते हैं और अनीति को बढ़ाते हैं।

यूरोप के डॉक्टर तो हद करते हैं। वे सिर्फ शरीर के ही गलत जतन के लिए लाखों जीवों को हर साल मारते हैं, जिंदा जीवों पर प्रयोग करते हैं। ऐसा करना किसी भी धर्म को मंजूर नहीं। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जरथोस्ती—सब धर्म कहते हैं कि आदमी के शरीर के लिए इतने जीवों को मारने की जरूरत नहीं।

डॉक्टर हमें धर्मभ्रष्ट[3] करते हैं। उनकी बहुत सी दवाओं में चरबी या दारू होती है। इन दोनों में से एक भी चीज हिंदू–मुसलमान को चल सके, ऐसी नहीं है। हम सभ्य होने का ढोंग करके, दूसरों को वहमी मानकर और बे–लगाम[4] होकर चाहे सो करते रहें, यह दूसरी बात है। लेकिन डॉक्टर हमें धर्म से भ्रष्ट करते हैं, यह साफ और सीधी बात है।

इसका परिणाम[5] यह आता है कि हम निःसत्त्व[6] और नामर्द बनते हैं। ऐसी दशा में हम लोकसेवा करने लायक नहीं रहते और शरीर से क्षीण[7] तथा बुद्धिहीन[8] होते जा रहे हैं। अंग्रेजी या यूरोपियन डॉक्टरी सीखना गुलामी की गाँठ को मजबूत बनाने जैसा है।

हम डॉक्टर क्यों बनते हैं, यह भी सोचने की बात है। उसका सच्चा कारण तो आबरूदार और पैसा कमाने का धंधा करने की इच्छा है। उसमें परोपकार की बात नहीं है। उस धंधे में परोपकार नहीं है, यह तो मैं बता चुका। उससे लोगों को नुकसान होता है। डॉक्टर सिर्फ आडंबर दिखाकर ही लोगों से बड़ी फीस वसूल करते हैं और अपनी एक पैसे की दवा के कई रुपए लेते हैं। यों विश्वास में और चंगे हो जाने की आशा में लोग डॉक्टरों से ठगे जाते हैं। जब ऐसा ही है तब भलाई का दिखावा करनेवाले डॉक्टरों से खुले ठग–वैद्य (नीम–हकीम)

ज्यादा अच्छे।



: १३ :

सच्ची सभ्यता कौन सी?

पाठक **:** आपने रेल को रद्द कर दिया, वकीलों की निंदा की, डॉक्टरों को दबा दिया। तमाम कल–काम[1] को भी आप नुकसानदेह मानेंगे, ऐसा मैं देख सकता हूँ। तब सभ्यता[2] कहें तो किसे कहें?

संपादक **:** इस सवाल का जवाब मुश्किल नहीं है। मैं मानता हूँ कि जो सभ्यता हिंदुस्तान ने दिखाई है, उस तक दुनिया में कोई नहीं पहुँच सकता। जो बीज हमारे पुरखों ने बोए हैं, उनकी बराबरी कर सके, ऐसी कोई चीज देखने में नहीं आई। रोम मिट्टी में मिल गया, ग्रीस का सिर्फ नाम ही रह गया, मिस्र की बादशाही चली गई, जापान पश्चिम के शिकंजे में फँस गया और चीन का कुछ भी कहा नहीं जा सकता। लेकिन गिरा–टूटा जैसा भी हो, हिंदुस्तान आज भी अपनी बुनियाद में मजबूत है।

जो रोम और ग्रीस गिर चुके हैं, उनकी किताबों से यूरोप के लोग सीखते हैं। उनकी गलतियाँ वे नहीं करेंगे। ऐसा गुमान[3] रखते हैं। ऐसी उनकी कंगाल हालत है, जबकि हिंदुस्तान अचल है, अडिग है। यही उसका भूषण है। हिंदुस्तानी पर आरोप लगाया जाता है कि वह ऐसा जंगली, ऐसा अज्ञानी है कि उससे जीवन में कुछ फेरबदल कराए ही नहीं जा सकते। यह आरोप हमारा गुण[4] है, दोष[5] नहीं। अनुभव[6] से जो हमें ठीक लगा है, उसे हम क्यों बदलेंगे? बहुत से अक्ल देनेवाले आते–जाते रहते हैं, पर हिंदुस्तान अडिग रहता है। यह उसकी खूबी है, यह उसका लंगर है।

सभ्यता वह आचरण[7] है, जिससे आदमी अपना फर्ज अदा करता है। फर्ज अदा करने के मानी है नीति का पालन करना। नीति के पालन का मतलब है अपने मन और इंद्रियों को वश में रखना। ऐसा करते हुए हम अपने को (अपनी असलियत को) पहचानते हैं। यही सभ्यता है। इससे जो उलटा है, वह बिगाड़ करनेवाला है।

बहुत से अंग्रेज लेखक लिख गए हैं कि ऊपर की व्याख्या[8] के मुताबिक हिंदुस्तान को कुछ भी

सीखना बाकी नहीं रहता।

यह बात ठीक है। हमने देखा कि मनुष्य की वृत्तियाँ[9] चंचल हैं। उसका मन बेकार की दौड़–धूप किया करता है। उसका शरीर जैसे–जैसे ज्यादा दिया जाए, वैसे–वैसे ज्यादा माँगता है। ज्यादा लेकर भी वह सुखी नहीं होता। भोग भोगने से भोग की इच्छा बढ़ती जाती है। इसलिए हमारे पुरखों ने भोग की हद बाँध दी। बहुत सोचकर उन्होंने देखा कि सुख–दु:ख तो मन के कारण हैं। अमीर अपनी अमीरी की वजह से सुखी नहीं है, गरीब अपनी गरीबी के कारण दु:खी नहीं है। अमीर दु:खी देखने में आता है और गरीब सुखी देखने में आता है। करोड़ों लोग तो गरीब ही रहेंगे। ऐसा देखकर उन्होंने भोग की वासना[10] छुड़वाई। हजारों साल पहले जो हल काम में लिया जाता था, उससे हमने काम चलाया। हजारों साल पहले जैसे झोंपड़े थे, उन्हें हमने कायम रखा। हजारों साल पहले जैसी हमारी शिक्षा[11] थी, वही चलती आई। हमने नाशकारक होड़ को समाज में जगह नहीं दी; सब अपना–अपना धंधा करते रहे। उसमें उन्होंने दस्तूर के मुताबिक दाम लिये। ऐसा नहीं था कि हमें यंत्र वगैरह की खोज करना ही नहीं आता था। लेकिन हमारे पूर्वजों ने देखा कि लोग अगर यंत्र वगैरह की झंझट में पड़ेंगे, तो गुलाम बनेंगे और अपनी नीति को छोड़ देंगे। उन्होंने सोच–समझकर कहा कि हमें अपने हाथ–पैरों से जो काम हो सके, वही करना चाहिए। हाथ–पैरों का इस्तेमाल करने में ही सच्चा सुख है, उसी में तंदुरुस्ती है।

उन्होंने सोचा कि बड़े शहर खड़े करना बेकार का झंझट है। उनमें लोग सुखी नहीं होंगे। उनमें धूर्तों[12] की टोलियाँ और वेश्याओं[13]की गलियाँ पैदा होंगी; गरीब अमीरों से लूटे जाएँगे। इसलिए उन्होंने छोटे देहातों से संतोष माना।

उन्होंने देखा कि राजाओं और उनकी तलवार के बनिस्बत नीति का बल ज्यादा बलवान है। इसलिए उन्होंने राजाओं को नीतिवान पुरुषों—ऋषियों और फकीरों—से कम दर्जे का माना।

ऐसा जिस राष्ट्र का गठन है, वह राष्ट्र दूसरों को सिखाने लायक है; वह दूसरों से सीखने लायक नहीं है।

इस राष्ट्र में अदालतें थीं, वकील थे, डॉक्टर–वैद्य थे। लेकिन वे सब ठीक ढंग से नियम के मुताबिक चलते थे। सब जानते थे कि ये धंधे बड़े नहीं हैं और वकील, डॉक्टर वगैरह लोगों में लूट नहीं चलाते थे; वे तो लोगों के आश्रित[14] थे। वे लोगों के मालिक बनकर नहीं रहते थे। इनसाफ काफी अच्छा होता था। अदालतों में न जाना, यह लोगों का ध्येय[15] था। उन्हें भरमानेवाले स्वार्थी लोग नहीं थे। इतनी सड़न भी सिर्फ राजा और राजधानी के आस–पास ही थी। यों (आम) प्रजा तो उससे स्वतंत्र रहकर अपने खेत का मालिकी हक भोगती थी। उसके पास सच्चा स्वराज था।

और जहाँ यह चांडाल[16] सभ्यता नहीं पहुँची है, वहाँ हिंदुस्तान आज भी वैसा ही है। उसके सामने आप अपने नए ढोंगों की बात करेंगे, तो वह आपकी हँसी उड़ाएगा। उस पर न तो

अंग्रेज राज करते हैं, न आप कर सकेंगे।

जिन लोगों के नाम पर हम बात करते हैं, उन्हें हम पहचानते नहीं हैं, न वे हमें पहचानते हैं। आपको और दूसरों को, जिनमें देशप्रेम है, मेरी सलाह है कि आप देश में—जहाँ रेल की बाढ़ नहीं फैली है उस भाग में—छह माह के लिए घूम आएँ और बाद में देश की लगन लगाएँ, बाद में स्वराज की बात करें।

अब आपने देखा कि सच्ची सभ्यता में किस चीज को कहता हूँ। ऊपर मैंने जो तसवीर खींची है, वैसा हिंदुस्तान जहाँ हो, वहाँ जो आदमी फेरफार करेगा। उसे आप दुश्मन समझिए। वह मनुष्य पापी है।

पाठक : आपने जैसा बताया वैसा ही हिंदुस्तान होता तब तो ठीक था। लेकिन जिस देश में हजारों बाल–विधवाएँ हैं, जिस देश में दो बरस की बच्ची

की शादी हो जाती है, जिस देश में बारह साल की उम्र के लड़के–लड़कियाँ घर–संसार चलाते हैं, जिस देश में स्त्री एक से ज्यादा पति करती है, जिस देश में नियोग[*] की प्रथा है, जिस देश में धर्म के नाम पर कुमारिकाएँ बेसवाएँ[17] बनती हैं, जिस देश में धर्म के नाम पर पाड़ों और बकरों की हत्या[18] होती है, वह देश भी हिंदुस्तान ही है। ऐसा होने पर भी आपने जो बताया, वह क्या सभ्यता का लक्षण[19] है?

संपादक : आप भूलते हैं। आपने जो दोष बताए, वे तो सचमुच दोष ही हैं। उन्हें कोई सभ्यता नहीं कहता। वे दोष सभ्यता के बावजूद कायम रहे हैं। उन्हें दूर करने के प्रयत्न हमेशा हुए हैं और होते ही रहेंगे। हममें जो नया जोश पैदा हुआ है, उसका उपयोग हम इन दोषों को दूर करने में कर सकते हैं।

मैंने आपको आज की सभ्यता की जो निशानी बताई, उसे इस सभ्यता के हिमायती खुद बताते हैं। मैंने हिंदुस्तान की सभ्यता का जो वर्णन[20] किया, वह वर्णन नई सभ्यता के हिमायतियों ने किया है।

किसी भी देश में किसी भी सभ्यता के मातहत सभी लोग संपूर्णता तक नहीं पहुँच पाए हैं। हिंदुस्तान की सभ्यता का झुकाव नीति को मजबूत करने की ओर है; पश्चिम सभ्यता का झुकाव अनीति को मजबूत करने की ओर है। इसलिए मैंने उसे हानिकारक कहा है। पश्चिम की सभ्यता निरीश्वरवादी[21] है, हिंदुस्तान की सभ्यता ईश्वर को माननेवाली है।

यों समझकर, ऐसी श्रद्धा रखकर, हिंदुस्तान के हित–चिंतकों को चाहिए कि वे हिंदुस्तान की सभ्यता से, बच्चा जैसे माँ से चिपटा रहता है, वैसे चिपटे रहें।



: १४ :

हिंदुस्तान कैसे आजाद हो?

पाठक **:** सभ्यता के बारे में आपके विचार मैं समझ गया। आपने जो कहा उस पर मुझे ध्यान देना होगा। तुरंत सबकुछ मंजूर कर लिया जाए, ऐसा आप नहीं मानते होंगे; ऐसी आशा भी नहीं रखते होंगे। आपके ऐसे विचारों के अनुसार आप हिंदुस्तान के आजाद होने का क्या उपाय बताएँगे?

संपादक **:** मेरे विचार सब लोग तुरंत मान लें, ऐसी आशा मैं नहीं रखता। मेरा फर्ज इतना ही है कि आपके जैसे जो लोग मेरे विचार जानना चाहते हैं, उनके सामने अपने विचार रख दूँ। वे विचार उन्हें पसंद आएँगे या नहीं आएँगे, यह तो समय बीतने पर ही मालूम होगा।

हिंदुस्तान की आजादी के उपायों का हम विचार कर चुके। फिर भी हमें दूसरे रूप में उन पर विचार किया। अब हम उन पर उनके स्वरूप में विचार करें।

जिस कारण से रोगी बीमार हुआ हो, वह कारण अगर दूर कर दिया जाए, तो रोगी अच्छा हो जाएगा। यह जगमशहूर बात है। इसी तरह जिस कारण से हिंदुस्तान गुलाम बना, वह कारण अगर दूर कर दिया जाए, तो वह बंधन से मुक्त[1] हो जाएगा।

पाठक **:** आपकी मान्यता के मुताबिक हिंदुस्तान की सभ्यता अगर सबसे अच्छी है, तो फिर वह गुलाम क्यों बना?

संपादक **:** सभ्यता तो मैंने कही वैसी ही है, लेकिन देखने में आया है कि हर सभ्यता पर आफतें आती हैं। जो सभ्यता अचल है, वह आखिरकार आफतों को दूर कर देती है। हिंदुस्तान के बालकों में कोई–न–कोई कमी थी, इसीलिए वह सभ्यता आफतों से घिर गई। लेकिन इस घेरे में से छूटने की ताकत उसमें है, यह उसके गौरव[2] को दिखाता है।

और फिर सारा हिंदुस्तान उसमें (गुलामी में) घिरा हुआ नहीं है। जिन्होंने पश्चिम की

शिक्षा पाई है और जो उसके पाश[3] में फँस गए हैं, वे ही गुलामी में घिरे हुए हैं। हम जगत् को अपनी दमड़ी के नाप से नापते हैं। अगर हम गुलाम हैं, तो जगत् को भी गुलाम मान लेते हैं। हम कंगाल दशा में हैं, इसलिए मान लेते हैं कि सारा हिंदुस्तान ऐसी दशा में है। दरअसल, ऐसा कुछ नहीं है। फिर भी हमारी गुलामी सारे देश की गुलामी है, ऐसा मानना ठीक है। लेकिन ऊपर की बात हम ध्यान में रखें तो समझ सकेंगे कि हमारी अपनी गुलामी मिट जाए, तो हिंदुस्तान की गुलामी मिट गई, ऐसा मान लेना चाहिए। इसमें अब आपको स्वराज की व्याख्या[4] भी मिल जाती है। हम अपने ऊपर राज करें वही स्वराज है; और वह स्वराज हमारी हथेली में है।

इस स्वराज को आप सपने जैसा न मानें। मन से मानकर बैठे रहने का भी यह स्वराज नहीं है। यह तो ऐसा स्वराज है कि आपने अगर इसका स्वाद चख लिया हो, तो दूसरों को इसका स्वाद चखाने के लिए आप जिंदगी भर कोशिश करेंगे। लेकिन मुख्य[5] बात तो हर शख्स के स्वराज भोगने की है। डूबता आदमी दूसरे को नहीं तारेगा, लेकिन तैरता आदमी दूसरे को तारेगा। हम खुद गुलाम होंगे और दूसरों को आजाद करने की बात करेंगे, तो यह संभव नहीं है।

लेकिन इतना काफी नहीं है। हमें और भी आगे सोचना होगा।

अब इतना तो आपकी समझ में आया होगा कि अंग्रेजों को देश से निकालने का मकसद सामने रखने की जरूरत नहीं है। अगर अंग्रेज हिंदुस्तानी बनकर रहें तो हम उनका समावेश यहाँ कर सकते हैं। अंग्रेज अगर अपनी सभ्यता के साथ रहना चाहें, तो उनके लिए हिंदुस्तान में जगह नहीं है। ऐसी हालत पैदा करना हमारे हाथ में है।

पाठक **:** अंग्रेज हिंदुस्तानी बनें, यह नामुमकिन है।

संपादक **:** हमारा ऐसा कहना यह कहने के बराबर है कि अंग्रेज मनुष्य नहीं हैं। वे हमारे जैसे बनें या न बनें, इसकी हमें परवाह नहीं है। हम अपना घर साफ करें। फिर रहने लायक लोग ही उसमें रहेंगे; दूसरे अपने आप चले जाएँगे। ऐसा अनुभव तो हर आदमी को हुआ होगा।

पाठक **:** ऐसा होने की बात तवारीख[6] में तो हमने नहीं पढ़ी।

संपादक **:** जो चीज तवारीख में नहीं देखी वह कभी नहीं होगी, ऐसा मानना मनुष्य की प्रतिष्ठा में अविश्वास करना है। जो बात हमारी अक्ल में आ सके, उसे आखिर हमें आजमाना तो चाहिए ही।

हर देश की हालत एक सी नहीं होती। हिंदुस्तान की हालत विचित्र है। हिंदुस्तान बल असाधारण है। इसलिए दूसरी तवारीखों से हमारा कम संबंध है। मैंने आपको बताया कि दूसरी सभ्यताएँ मिट्टी में मिल गईं, जबकि हिंदुस्तानी सभ्यता को आँच नहीं आई है।

पाठक **:** मुझे ये सब बातें ठीक नहीं लगतीं। हमें लड़कर अंग्रेजों को निकालना ही होगा, इसमें कोई शक नहीं। जब तक वे हमारे मुल्क में हैं, तब तक हमें चैन नहीं पड़ सकता। 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' ऐसा देखने में आता है। अंग्रेज यहाँ हैं, इसलिए हम कमजोर होते जा रहे हैं। हमारा तेज चला गया है और हमारे लोग घबराए से दीखते हैं। अंग्रेज हमारे देश के लिए यम (काल) जैसे हैं। उस यम को हमें किसी भी प्रयत्न से भगाना होगा।

संपादक **:** आप अपने आवेश[7] में मेरा सारा कहना भूल गए हैं। अंग्रेजों को यहाँ लानेवाले हम हैं और वे हमारी बदौलत ही यहाँ रहते हैं। आप यह कैसे भूल जाते हैं कि हमने उनकी सभ्यता अपनाई है, इसलिए वे यहाँ रह सकते हैं? आप उनसे जो नफरत करते हैं, वह नफरत आपको उनकी सभ्यता से करनी चाहिए। फिर भी मान लें कि हम लड़कर उन्हें निकालना चाहते हैं। यह कैसे हो सकेगा?

पाठक **:** इटली ने किया वैसे। मैझिनी और गेरीबाल्डी ने जो किया, वह तो हम भी कर सकते हैं। वे महावीर थे, इस बात से क्या आप इनकार कर सकेंगे?



: १५ :

इटली और हिंदुस्तान

संपादक **:** आपने इटली का उदाहरण[1] ठीक दिया। मैझिनी महात्मा था। गैरीबाल्डी बड़ा योद्धा[2] था। दोनों पूजनीय थे। उनसे हम बहुत सीख सकते हैं। फिर भी इटली की दशा और हिंदुस्तान की दशा में फर्क है।

पहले तो मैझिनी और गैरीबाल्डी के बीच का भेद जानने लायक है। मैझिनी के अरमान अलग थे। मैझिनी जैसा सोचता था वैसा इटली में नहीं हुआ। मैझिनी ने मनुष्य–जाति के कर्तव्य के बारे में लिखते हुए यह बताया है कि हर एक को स्वराज भोगना सीख लेना चाहिए। यह बात उसके लिए सपने जैसी रही। गैरीबाल्डी और मैझिनी के बीच मतभेद[3] हो गया था, यह याद रखना चाहिए। इसके सिवा, गैरीबाल्डी ने हर इटालियन के हाथ में हथियार दिए और हर इटालियन ने हथियार लिये।

इटली और आस्ट्रिया के बीच सभ्यता का भेद नहीं था। वे तो 'चचेरे भाई' माने जाएँगे। 'जैसे को तैसा' वाली बात इटली की थी। इटली को परदेशी (आस्ट्रिया के) जुए से छुड़ाने का मोह गैरीबाल्डी को था। इसके लिए उसने कावूर के मार्फत जो साजिशें[4] कीं, वे उसकी शूरता को बट्टा लगानेवाली हैं।

और अंत में नतीजा क्या निकाला? इटली में इटालियन राज करते हैं इसलिए इटली की प्रजा सुखी है, ऐसा आप मानते हों, तो मैं आपसे कहूँगा कि आप अँधेरे में भटकते हैं। मैझिनी ने साफ–साफ बताया है कि इटली आजाद नहीं हुआ है। विक्टर इमेन्युअल ने इटली का एक अर्थ किया, मैझिनी ने दूसरा। इमेन्युअल, कावूर और गैरीबाल्डी के विचार से इटली का अर्थ था—इमेन्युअल या इटली का राजा और उसकी हुजूरी। मैझिनी के विचार से इटली का अर्थ था इटली के लोग—उसके किसान। इमेन्युअल वगैरह तो उनके (प्रजा के) नौकर थे। मैझिनी का इटली अब भी गुलाम है। दो राजाओं के बीच शतरंज की बाजी लगी थी; इटली की प्रजा तो सिर्फ प्यादा थी और है। इटली के मजदूर अब भी दु:खी हैं। इटली के मजदूरों

की दाद–फरियाद नहीं सुनी जाती, इसलिए वे लोग खून करते हैं, विरोध करते हैं, सिर फोड़ते हैं और वहाँ बलवा होने का डर आज भी बना हुआ है। ऑस्ट्रिया के जाने से इटली को क्या लाभ हुआ? नाम का ही लाभ हुआ। जिन सुधारों के लिए जंग मचा, वे सुधार हुए नहीं, प्रजा की हालत सुधरी नहीं।

हिंदुस्तान की ऐसी दशा करने का तो आपका इरादा नहीं होगा। मैं मानता हूँ कि आपका विचार हिंदुस्तान के करोड़ों लोगों को सुखी करने का होगा, यह नहीं कि आप या मैं राजसत्ता ले लूँ। अगर ऐसा है तो हमें एक ही विचार करना चाहिए। वह यह कि प्रजा स्वतंत्र[5] कैसे हो?

आप कबूल करेंगे कि कुछ देशी रियासतों में प्रजा कुचली जाती है। वहाँ के शासक नीचता से लोगों को कुचलते हैं। उनका जुल्म अंग्रेजों के जुल्म से भी ज्यादा है। ऐसा जुल्म अगर आप हिंदुस्तान में चाहते हों, तो हमारी पटरी कभी नहीं बैठेगी।

मेरा स्वदेशाभिमान[6]मुझे यह नहीं सिखाता कि देशी राजाओं के मातहत जिस तरह प्रजा कुचली जाती है उसी तरह उसे कुचलने दिया जाए। मुझमें बल होगा तो मैं देशी राजाओं के जुल्म के खिलाफ और अंग्रेजी जुल्म के खिलाफ जूझूँगा।

स्वदेशाभिमान का अर्थ मैं देश का हित[7] समझता हूँ। अगर देश का हित अंग्रेजों के हाथों होता हो, तो मैं आज अंग्रेजों को झुककर नमस्कार करूँगा। अगर कोई अंग्रेज कहे कि देश को आजाद करना चाहिए, जुल्म के खिलाफ होना चाहिए और लोगों की सेवा करनी चाहिए, तो उस अंग्रेज को मैं हिंदुस्तानी मानकर उसका स्वागत करूँगा।

फिर इटली की तरह जब हिंदुस्तान को हथियार मिलें, तभी वह लड़ सकता है; पर इस भगीरथ (बहुत बड़े) काम का तो, मालूम होता है, आपने विचार ही नहीं किया है। अंग्रेज गोला–बारूद से पूरी तरह लैस हैं, इससे मुझे डर नहीं लगता। लेकिन ऐसा तो दीखता है कि उनके हथियारों से उन्हीं के खिलाफ लड़ना हो, तो हिंदुस्तान को हथियारबंद करना होगा। अगर ऐसा हो सकता हो, तो इसमें कितने साल लगेंगे? और तमाम हिंदुस्तानियों को हथियारबंद करना तो हिंदुस्तान को यूरोप सा बनाने जैसा होगा। अगर ऐसा हुआ तो आज यूरोप के जो बेहाल हैं वैसे ही हिंदुस्तान के भी होंगे। थोड़े में, हिंदुस्तान को यूरोप की सभ्यता अपनानी होगी। ऐसा ही होने वाला हो, तो अच्छी बात यह होगी कि जो अंग्रेज उस सभ्यता में कुशल हैं, उन्हीं को हम यहाँ रहने दें। उनसे थोड़ा–बहुत झगड़कर कुछ हक हम पाएँगे, कुछ नहीं पाएँगे और अपने दिन गुजारेंगे।

लेकिन बात तो यह है कि हिंदुस्तान की प्रजा कभी हथियार नहीं उठाएगी। न उठाए यह ठीक ही है।

पाठक **:** आप तो बहुत आगे बढ़ गए। सबके हथियारबंद होने की जरूरत नहीं। हम पहले तो कुछ अंग्रेजों का खून करके आतंक[8] फैलाएँगे। फिर तो थोड़े लोग हथियारबंद होंगे, वे

खुल्लमखुल्ला लड़ेंगे। उसमें पहले तो बीस–पच्चीस लाख हिंदुस्तानी जरूर मरेंगे। लेकिन आखिर हम देश को अंग्रेजों से जीत लेंगे। हम गुरीला (डाकुओं जैसी) लड़ाई लड़कर अंग्रेजों को हरा देंगे।

संपादक : आपका खयाल हिंदुस्तान की पवित्र भूमि को राक्षसी[9] बनाने का लगता है। अंग्रेजों का खून करके हिंदुस्तान को छुड़ाएँगे, ऐसा विचार करते हुए आपको त्रास क्यों नहीं होता? खून तो हमें अपना करना चाहिए; क्योंकि हम नामर्द बन गए हैं, इसीलिए हम खून का विचार करते हैं। ऐसा करके आप किसे आजाद करेंगे? हिंदुस्तान की प्रजा ऐसा कभी नहीं चाहती। हम जैसे लोग ही, जिन्होंने अधम सभ्यता रूपी भाँग पी है, नशे में ऐसा विचार करते हैं। खून करके जो लोग राज करेंगे, वे प्रजा को सुखी नहीं बना सकेंगे। धींगरा[10] ने जो खून किया है उससे या जो खून हिंदुस्तान में हुए हैं, उनसे देश को फायदा हुआ है, ऐसा अगर कोई मानता हो, तो वह बड़ी भूल करता है। धींगरा को मैं देशाभिमानी मानता हूँ, लेकिन उसका देशप्रेम पागलपन से भरा था। उसने अपने शरीर का बलिदान गलत तरीके से दिया। उससे अंत में तो देश को नुकसान ही होने वाला है।

पाठक : लेकिन आपको इतना तो कबूल करना ही होगा कि अंग्रेज इस खून से डर गए हैं, और लॉर्ड मॉर्ले ने जो कुछ हमें दिया है, वह ऐसे डर से ही दिया है?

संपादक : अंग्रेज जैसे डरपोक प्रजा हैं वैसे बहादुर भी हैं। गोला–बारूद का असर उन पर तुरंत होता है, ऐसा मैं मानता हूँ। संभव है, लॉर्ड मॉर्ले ने हमें जो कुछ दिया, वह डर से दिया हो। लेकिन डर से मिली हुई चीज जब तक डर बना रहता है तभी तक टिक सकती है।



: १६ :

गोला–बारूद

पाठक : डर से दिया हुआ जब तक डर रहे तभी तक टिक सकता है, यह तो आपने विचित्र बात कही। जो दिया सो दिया। उसमें फिर क्या हेर–फेर हो सकता है?

संपादक : ऐसा नहीं है। १८५७ की घोषणा बलवे के अंत में लोगों में शांति कायम रखने के लिए की गई थी। जब शांति हो गई और लोग भोले दिल के बन गए तब उसका अर्थ बदल गया। अगर मैं सजा के डर से चोरी न करूँ, तो सजा का डर मिट जाने पर चोरी करने की मेरी फिर से इच्छा होगी और मैं चोरी करूँगा। यह तो बहुत ही साधारण अनुभव[1] है; इससे इनकार नहीं किया जा सकता। हमने मान लिया है कि डाँट–डपटकर लोगों से काम लिया जा सकता है और इसलिए हम ऐसा करते आए हैं।

पाठक : आपकी यह बात आपके खिलाफ जाती है, ऐसा आपको नहीं लगता? आपको स्वीकार करना होगा कि अंग्रेजों ने खुद जो कुछ हासिल किया है, वह मार–काट करके ही हासिल किया है। आप कह चुके हैं कि (मार–काट से) उन्होंने जो कुछ हासिल किया है वह बेकार है; यह मुझे याद है। इससे मेरी दलील को धक्का नहीं पहुँचता। उन्होंने बेकार (चीज) पाने का सोचा और उसे पाया। मतलब यह कि उन्होंने अपनी मुराद पूरी की। साधन[2] क्या था, इसकी चिंता हम क्यों करें? अगर हमारी मुराद अच्छी हो तो क्या उसे हम चाहे जिस साधन से, मार–काट करके भी, पूरा नहीं करेंगे? चोर मेरे घर में घुसे तब क्या मैं साधन का विचार करूँगा? मेरा धर्म[3] तो उसे किसी भी तरह बाहर निकालने का ही होगा।

ऐसा लगता है कि आप यह तो कबूल करते हैं कि हमें सरकार के पास अरजियाँ भेजने से कुछ नहीं मिला है और न आगे कभी मिलनेवाला है। तो फिर उन्हें मारकर हम क्यों न लें? जरूरत हो उतनी मार का डर हम हमेशा बनाए रखेंगे। बच्चा अगर आग में पैर रखे और उसे आग से बचाने के लिए हम उस पर रोक लगाएँ, तो आप भी इसे दोष नहीं मानेंगे। किसी भी तरह हमें अपना काम पूरा कर लेना है।

संपादक **:** आपने दलील तो अच्छी दी। वह ऐसी है कि बहुतों ने उससे धोखा खाया है। मैं भी ऐसी ही दलील करता था। लेकिन अब मेरी आँखें खुल गई हैं और मैं अपनी गलती समझ सकता हूँ। आपको वह गलती बताने की कोशिश करूँगा।

पहले तो इस दलील पर विचार करें कि अंग्रेजों ने जो कुछ पाया वह मार–काट करके पाया, इसलिए हम भी वैसा ही करके मनचाही चीज पाएँ। अंग्रेजों ने मार–काट की और हम भी कर सकते हैं, यह बात तो ठीक है। लेकिन मार–काट से जैसी चीज उन्हें मिली वैसी ही हम भी ले सकते हैं। आप कबूल करेंगे कि वैसी चीज हमें नहीं चाहिए।

आप मानते हैं कि साधन और साध्य—जरिया और मुराद—के बीच कोई संबंध नहीं है। यह बहुत बड़ी भूल है। इस भूल के कारण जो लोग धार्मिक[4] कहलाते हैं, उन्होंने घोर कर्म किए हैं। यह तो धतूरे का पौधा लगाकर मोगरे के फूल की इच्छा करने जैसा हुआ। मेरे लिए समुद्र पार करने का साधन जहाज ही हो सकता है। अगर मैं पानी में बैलगाड़ी डाल दूँ तो वह गाड़ी और मैं दोनों समुद्र के तले पहुँच जाएँगे। जैसे देव वैसी पूजा—यह वाक्य[5] बहुत सोचने लायक है। उसका गलत अर्थ करके लोग भुलावे में पड़ गए हैं। साधन बीज है और साध्य—हासिल करने की चीज—पेड़ है। इसलिए जितना संबंध बीज और पेड़ के बीच है, उतना ही साधन और साध्य के बीच है। शैतान को भजकर मैं ईश्वर–भजन का फल पाऊँ, यह कभी हो ही नहीं सकता। इसलिए यह कहना कि हमें तो ईश्वर को ही भजना है, साधन भले शैतान हो, बिलकुल अज्ञान की बात है। जैसी करनी वैसी भरनी।

अंग्रेजों ने मार–काट करके १८३३ में वोट के (मत के) विशेष अधिकार पाए। क्या मार–काट करके वे अपना फर्ज समझ सके? उनकी मुराद अधिकार पाने की थी, इसलिए उन्होंने मार–काट मचाकर अधिकार पा लिये। सच्चे अधिकार तो फर्ज के फल[6] हैं; वे अधिकार उन्होंने नहीं पाए। नतीजा यह हुआ कि सबने अधिकार पाने का प्रयत्न किया, लेकिन फर्ज सो गया। जहाँ सभी अधिकार की बात करें, वहाँ कौन किसको दे? वे कोई भी फर्ज अदा नहीं करते, ऐसा कहने का मतलब यहाँ नहीं है। लेकिन जो अधिकार वे माँगते थे, उन्हें हासिल करके उन्होंने वे फर्ज पूरे नहीं किए जो उन्हें करने चाहिए थे। उन्होंने योग्यता प्राप्त नहीं की, इसलिए उनके अधिकार उनकी गरदन पर जुए की तरह सवार हो बैठे हैं। इसलिए जो कुछ उन्होंने पाया है, वह उनके साधन का ही परिणाम[7] है। जैसी चीज उन्हें चाहिए थी, वैसे साधन उन्होंने काम में लिये।

मुझे अगर आपसे आपकी घड़ी छीन लेनी हो, तो बेशक आपके साथ मुझे मार–पीट करनी होगी। लेकिन अगर मुझे आपकी घड़ी खरीदनी हो, तो आपको दाम देने होंगे। अगर मुझे बख्शीश के तौर पर आपकी घड़ी लेनी होगी, तो मुझे आपसे विनत[8] करनी होगी। घड़ी पाने के लिए मैं जो साधन काम में लूँगा, उसके अनुसार वह चोरी का माल, मेरा माल या बख्शीश की चीज होगी। तीन साधनों के तीन अलग परिणाम आएँगे। तब आप कैसे कह सकते हैं कि साधन की कोई चिंता नहीं?

अब चोर को घर में से निकालने की मिसाल लें। मैं आपसे इसमें सहमत नहीं हूँ कि चोर को

निकालने के लिए चाहे जो साधन काम में लिया जा सकता है।

अगर मेरे घर में मेरा पिता चोरी करने आएगा, तो मैं एक साधन काम में लूँगा। अगर कोई मेरी पहचान का चोरी करने आएगा, तो मैं वही साधन काम में नहीं लूँगा। और कोई अनजान आदमी आएगा, तो मैं तीसरा साधन काम में लूँगा। अगर वह गोरा हो तो एक साधन और हिंदुस्तानी हो तो दूसरा साधन काम में लाना चाहिए, ऐसा भी शायद आप कहेंगे। अगर कोई मुर्दार लड़का चोरी करने आया होगा, तो मैं बिलकुल दूसरा ही साधन काम में लूँगा। अगर वह मेरी बराबरी का होगा, तो और ही कोई साधन मैं काम में लूँगा। और अगर वह हथियारबंद तगड़ा आदमी होगा, तो मैं चुपचाप सो रहूँगा। इसमें पिता से लेकर ताकतवर आदमी तक अलग–अलग साधन इस्तेमाल किए जाएँगे। पिता होगा तो भी मुझे लगता है कि मैं सो रहूँगा और हथियार से लैस कोई होगा तो भी मैं सो रहूँगा। पिता में भी बल है, हथियारबंद आदमी में भी बल है। दोनों बलों के वश होकर मैं अपनी चीज को जाने दूँगा। पिता का बल मुझे दया से रुलाएगा। हथियारबंद आदमी का बल मेरे मन में गुस्सा पैदा करेगा; हम कट्टर दुश्मन हो जाएँगे। ऐसी मुश्किल हालत है। इन मिसालों से हम दोनों साधनों के निर्णय[9] पर तो नहीं पहुँच सकेंगे। मुझे तो सब चोरों के बारे में क्या करना चाहिए, यह सूझता है। लेकिन उस इलाज से आप घबरा जाएँगे, इसलिए मैं आपके सामने उसे नहीं रखता। आप इसे समझ लें; और अगर नहीं समझेंगे तो हर वक्त आपको अलग साधन काम में लाने होंगे। लेकिन आपने इतना तो देखा कि चोर को निकालने के लिए चाहे जो साधन काम नहीं देगा; और जैसा साधन आपका होगा, उसके मुताबिक नतीजा आएगा। आपका धर्म किसी भी साधन से चोर को घर से निकालने का हरगिज नहीं है।

जरा आगे बढ़ें। वह हथियारबंद आदमी आपकी चीज ले गया है। आपने उसे याद रखा है। आपके मन में उस पर गुस्सा भरा है। आप उस लुच्चे को अपने लिए नहीं, लेकिन लोगों के कल्याण के लिए सजा देना चाहते हैं। आपने कुछ आदमी जमा किए। उसके घर पर आपने धावा बोलने का निश्चय किया। उसे मालूम हुआ। वह भागा। उसने दूसरे लुटेरे जमा किए। वह भी खीजा हुआ है। अब तो उसने आपका घर दिन–दहाड़े लूटने का संदेशा आपको भेजा है। आप उसके मुकाबले के लिए तैयार बैठे हैं। इस बीच लुटेरा आपके आस–पास के लोगों को हैरान करता है। वे आपसे शिकायत करते हैं। आप कहते हैं, ''यह सब मैं आप ही के लिए तो करता हूँ। मेरा माल गया उसकी तो कोई बिसात ही नहीं।'' लोग कहते हैं, ''पहले तो वह हमें लूटता नहीं था। आपने जब से उसके साथ लड़ाई शुरू की है, तभी से उसने यह काम शुरू किया है।'' आप दुविधा में फँस जाते हैं। गरीबों के ऊपर आपको रहम है। उनकी बात सही है। अब क्या किया जाए? क्या लुटेरे को छोड़ दिया जाए? इससे तो आपकी इज्जत चली जाएगी। इज्जत सबको प्यारी होती है। आप गरीबों से कहते हैं, ''कोई फिक्र नहीं। आइए, मेरा धन आपका ही है। मैं आपको हथियार देता हूँ। मैं आपको उनका उपयोग सिखाऊँगा। आप उस बदमाश को मारिए, छोड़िए नहीं।'' यों लड़ाई बढ़ी। लुटेरे बढ़े। लोगों ने खुद होकर मुसीबत मोल ली। चोर से बदला लेने का परिणाम यह आया कि नींद बेचकर जागरण मोल लिया। जहाँ शांति थी वहाँ अशांति पैदा हुई। पहले तो जब मौत आती तभी मरते थे, अब तो सदा ही मरने के दिन आए। लोग हिम्मत हारकर पस्तहिम्मत[10] बने।

इसमें मैंने बढ़ा–चढ़ाकर कुछ नहीं कहा है, यह आप धीरज से सोचेंगे तो देख सकेंगे। यह एक साधन हुआ।

अब दूसरे साधन की जाँच करें। चोर को आप अज्ञानी[11] मान लेते हैं। कभी मौका मिलने पर उसे समझाने का आपने सोचा है। आप यह भी सोचते हैं कि वह भी हमारे जैसा आदमी है। उसने किस इरादे से चोरी की, यह आपको क्या मालूम? आपके लिए अच्छा रास्ता तो यही है कि जब मौका मिले तब आप उस आदमी के भीतर से चोरी का बीज ही निकाल दें। ऐसा आप सोच रहे हैं, इतने में वे भाई साहब फिर से चोरी करने आते हैं। आप नाराज नहीं होते। आपको उस पर दया आती है। आप सोचते हैं कि यह आदमी रोगी है। आप खिड़की–दरवाजे खुले कर देते हैं। आप अपनी सोने की जगह बदल देते हैं। आप अपनी चीजें झट से जाई जा सकें, इस तरह रख देते हैं। चोर आता है। वह घबराता है। यह सब उसे नया ही मालूम होता है। माल तो वह ले जाता है, लेकिन उसका मन चक्कर में पड़ जाता है। वह गाँव में जाँच–पड़ताल करता है। आपकी दया के बारे में उसको मालूम होता है। वह पछताता है और आप से माफी माँगता है। आपकी चीजें वापस ले आता है। वह चोरी का धंधा छोड़ देता है। आपका सेवक बन जाता है। आप उसे काम–धंधे से लगा देते हैं। यह दूसरा साधन है।

आप देखते हैं कि अलग–अलग साधनों के अलग–अलग नतीजे आते हैं। सब चोर ऐसा ही बरताव करेंगे या सबमें आपका सा दयाभाव होगा, ऐसा मैं इससे साबित नहीं करना चाहता। लेकिन यही दिखाना चाहता हूँ कि अच्छे नतीजे लाने के लिए अच्छे ही साधन चाहिए। और अगर सब नहीं तो ज्यादातर मामलों में हथियार–बल से दया–बल ज्यादा ताकतवर साबित होता है। हथियार में हानि[12] है, दया में कभी नहीं।

अब अरजी की बात लें। जिसके पीछे बल नहीं है वह अरजी निकम्मी है, इसमें कोई शक नहीं। फिर भी स्व. न्यायमूर्ति रानडे कहते थे कि अरजी लोगों को तालीम देने का एक साधन है। उससे लोगों की अपनी स्थिति[13] का भान कराया जा सकता है और राजकर्ता[14] को चेतावनी दी जा सकती है। यों सोचें तो अरजी निकम्मी चीज है। बराबरी का आदमी अरजी करेगा तो यह उसकी नम्रता की निशानी मानी जाएगी। गुलाम अरजी करेगा तो वह उसकी गुलामी की निशानी होगी। जिस अरजी के पीछे बल है, वह बराबरी के आदमी की अरजी है, और वह अपनी माँग अरजी के रूप में रखता है, यह उसकी खानदानियत को बताता है।

अरजी के पीछे दो तरह के बल होते हैं—''अगर आप नहीं देंगे तो हम आपको मारेंगे।'' यह गोला–बारूद का बल है। इसका बुरा नतीजा हम देख चुके। दूसरा बल यह है—''अगर आप नहीं देंगे तो हम आपके अरजदार नहीं रहेंगे। हम अरजदार होंगे तो आप बादशाह बने रहेंगे। हम आपके साथ कोई व्यवहार नहीं रखेंगे।'' इस बल को चाहे दया–बल कहें, चाहे आत्म–बल कहें या सत्याग्रह कहें। यह बल अविनाशी[15] है और इस बल का उपयोग करनेवाला अपनी हालत को बराबर समझता है। इसका समावेश हमारे बुजुर्गों ने 'एक

नाहीं सब रोगों की दवा' में किया है। यह बल जिसमें है, उसका हथियार–बल कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

बच्चा अगर आग में पैर रखे, तो उसको दबाने की मिसाल की छानबीन करने में तो आप हार जाएँगे। बच्चे के साथ आप क्या करेंगे? मान लीजिए कि बच्चा ऐसा जोर करे कि आपको मारकर वह आग में जा पड़े। तब तो आग में पड़ने से रोकने के लिए आप उसके प्राण ले लें या उसका आग में पड़ना आपसे देखा नहीं जाता, इसलिए आप स्वयं आग में पड़कर अपनी जान दे दें। आप बच्चे के प्राण तो नहीं ही लेंगे। आप में अगर संपूर्ण दयाभाव न हो, तो मुमकिन है कि आप अपने प्राण नहीं देंगे। तो फिर लाचारी से आप बच्चे को आग में कूदने देंगे। इस तरह आप बच्चे पर हथियार–बल का उपयोग नहीं करते हैं। बच्चे को आप और किसी तरह रोक सकें तो रोकेंगे; और वह बल कम दर्जे का लेकिन हथियार–बल ही होगा, ऐसा भी आप न समझ लें। वह बल और ही प्रकार[16] का है। उसी को समझ लेना है।

बच्चे को रोकने में आप सिर्फ बच्चे का स्वार्थ देखते हैं। जिसके ऊपर आप अंकुश रखना चाहते हैं, उस पर उसके स्वार्थ के लिए ही अंकुश रखेंगे। यह मिसाल अंग्रेजों पर जरा भी लागू नहीं होती। आप अंग्रेजों पर जो हथियार–बल का उपयोग करना चाहते हैं, उसमें आप अपना ही यानी प्रजा का स्वार्थ देखते हैं। उसमें दया जरा भी नहीं है। अगर आप यों कहें कि अंग्रेज जो अधम–नीच काम करते हैं। वह आग है, वे आग में अज्ञान के कारण जाते हैं और आप दया से अज्ञानी को यानी बच्चे को उससे बचाना चाहते हैं, तो इस प्रयोग को आजमाने के लिए आपको जहाँ–जहाँ जो भी आदमी नीच काम करता होगा। वहाँ–वहाँ पहुँचना होगा और सामनेवाले के—बच्चे के—प्राण लेने के बजाय अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ेगी। इतना पुरुषार्थ[17]

आप करना चाहें तो कर सकते हैं, आप स्वतंत्र हैं। पर यह बात बिलकुल असंभव है।



: १७ :

सत्याग्रह—आत्मबल

पाठक : आप जिस सत्याग्रह या आत्मबल की बात करते हैं, उसका इतिहास में कोई प्रमा[1] है? आज तक दुनिया का एक भी राष्ट्र इस बल से ऊपर चढ़ा हो, ऐसा देखने में नहीं आता। मार–काट के बिना बुरे लोग सीधे रहेंगे ही नहीं, ऐसा विश्वास अभी भी मेरे मन में बना हुआ है।

संपादक : कवि तुलसीदास जी ने लिखा है—

दया धरम को मूल है, पापमूल[*] अभिमान।

तुलसी दया न छाँड़िए, जब लग घट में प्रान॥

मुझे तो यह वाक्य शास्त्र–वचन जैसा लगता है। जैसे दो और दो चार ही होते हैं, उतना ही भरोसा मुझे ऊपर के वचन पर है। दया–बल आत्म–बल है, सत्याग्रह है। और इस बल के प्रमाण पग–पग पर दिखाई देते हैं। अगर यह बल नहीं होता, तो पृथ्वी रसातल (सात पातालों में से एक) में पहुँच गई होती।

लेकिन आप तो इतिहास का प्रमाण चाहते हैं। इसके लिए हमें इतिहास का अर्थ जानना होगा।

‘इतिहास’ का शब्दार्थ है—‘ऐसा हो गया।’ ऐसा अर्थ करें तो आपको सत्याग्रह के कई प्रमाण दिए जा सकेंगे। ‘इतिहास’ जिस अंग्रेजी शब्द का तरजुमा है और जिस शब्द का अर्थ बादशाहों या राजाओं की तवारीख होता है, उसका अर्थ लेने से सत्याग्रह का प्रमाण नहीं मिल सकता। जस्ते की खान में आप अगर चाँदी ढूँढ़ने जाएँ, तो वह कैसे मिलेगी? ‘हिस्टरी’ में दुनिया के कोलाहल की ही कहानी मिलेगी। इसलिए गोरे लोगों में कहावत है कि जिस राष्ट्र की ‘हिस्टरी’ (कोलाहल) नहीं है, वह राष्ट्र सुखी है। राजा लोग कैसे खेलते थे, कैसे खून करते थे, कैसे बैर रखते थे, यह सब ‘हिस्टरी’ में मिलता है। अगर यही इतिहास होता, अगर इतना ही हुआ होता, तब तो यह दुनिया कब की डूब गई होती। अगर दुनिया की

कथा लड़ाई से शुरू हुई होती, तो आज एक भी आदमी जिंदा नहीं रहता। जो प्रजा लड़ाई का ही भोग (शिकार) बन गई, उसकी ऐसी ही दशा हुई है। ऑस्ट्रेलिया के हब्शी लोगों का नामोनिशान मिट गया है। ऑस्ट्रेलिया के गोरों ने उनमें से शायद ही किसी को जीने दिया है। जिनकी जड़ ही खत्म हो गई, वे लोग सत्याग्रही नहीं थे। जो जिंदा रहेंगे वे देखेंगे कि ऑस्ट्रेलिया के गोरे लोगों के भी यही हाल होंगे। 'जो तलवार चलाते हैं उनकी मौत तलवार से ही होती है।' हमारे यहाँ ऐसी कहावत है कि 'तैराक की मौत पानी में'।

दुनिया में इतने लोग आज भी जिंदा हैं, यह बताता है कि दुनिया का आधार हथियार–बल पर नहीं है, सत्य, दया या आत्मबल पर है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि दुनिया लड़ाई कि हंगामों के बावजूद टिकी हुई है। इसलिए लड़ाई के बल के बजाय दूसरा ही बल उसका आधार है।

हजारों बल्कि लाखों लोग प्रेम के वश रहकर अपना जीवन बसर करते हैं। करोड़ों कुटुंबों का क्लेश[2] प्रेम की भावना में समा जाता है, डूब जाता है। सैकड़ों राष्ट्र मेल–जोल से रहे हैं, इसको 'हिस्टरी' नोट नहीं करती; 'हिस्टरी' कर भी नहीं सकती। जब इस दया की, प्रेम की और सत्य की धारा रुकती है, टूटती है, तभी इतिहास में वह लिखा जाता है। एक कुटुंब के दो भाई लड़े। इसमें एक ने दूसरे के खिलाफ सत्याग्रह का बल काम में लिया। दोनों फिर से मिल–जुलकर रहने लगे। इसका नोट कौन लेता है? अगर दोनों भाइयों में वकीलों की मदद से या दूसरे कारणों से बैर–भाव बढ़ता और वे हथियारों या अदालतों (अदालत एक तरह का हथियार–बल, शरीर–बल ही है) के जरिए लड़ते, तो उनके नाम अखबारों में छपते, अड़ोस–पड़ोस के लोग जानते और शायद इतिहास में भी लिखे जाते। जो बात कुटुंबों, जमातों और इतिहास के बारे में सच है, वही राष्ट्रों के बारे में भी समझ लेनी चाहिए। कुटुंब के लिए एक कानून और राष्ट्र के लिए दूसरा, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है। 'हिस्टरी' अस्वाभाविक[3] बातों को दर्ज करती है। सत्याग्रह स्वाभाविक है, इसलिए उसे दर्ज करने की जरूरत ही नहीं है।

पाठक **:** आपके कहे मुताबिक तो यही समझ में आता है कि सत्याग्रह की मिसालें इतिहास में नहीं लिखी जा सकतीं। इस सत्याग्रह को ज्यादा समझने की जरूरत है। आप जो कुछ कहना चाहते हैं, उसे ज्यादा साफ शब्दों में कहेंगे तो अच्छा होगा।

संपादक **:** सत्याग्रह या आत्मबल को अंग्रेजी में 'पैसिव रेजिस्टेंस' कहा जाता है। जिन लोगों ने अपने अधिकार पाने के लिए खुद दुःख सहन किया था, उनके दुःख सहने के ढंग के लिए यह शब्द बरता गया है। उसका ध्येय[4] लड़ाई ध्येय से उलटा है। जब मुझे कोई काम पसंद न आए और वह काम मैं न करूँ, तो उसमें मैं सत्याग्रह या आत्मबल का उपयोग करता हूँ।

मिसाल के तौर पर, मुझ पर लागू होने वाला कोई कानून सरकार ने पास किया। वह कानून मुझे पसंद नहीं है। अब अगर मैं सरकार पर हमला करके यह कानून रद्द करवाता हूँ, तो कहा जाएगा कि मैंने शरीर–बल का उपयोग किया। अगर मैं उस कानून को मंजूर ही न

करूँ और उस कारण से होने वाली सजा भुगत लूँ, तो कहा जाएगा कि मैंने आत्मबल या सत्याग्रह से काम लिया। सत्याग्रह में मैं अपना ही बलिदान देता हूँ।

यह तो सब कोई कहेंगे कि दूसरे का भोग–बलिदान लेने से अपना भोग देना ज्यादा अच्छा है। इसके सिवा, सत्याग्रह से लड़ते हुए अगर लड़ाई गलत ठहरी, तो सिर्फ लड़ाई छेड़नेवाला ही दु:ख भोगता है। यानी अपनी भूल की सजा वह खुद भोगता है। ऐसी कई घटनाएँ हुई हैं, जिनमें लोग गलती से शामिल हुए थे। कोई भी आदमी दावे से यह नहीं कह सकता कि फलाँ काम खराब ही है। लेकिन जिसे वह खराब लगा, उसके लिए तो वह खराब ही है। अगर ऐसा ही है तो फिर उसे वह काम नहीं करना चाहिए और उसके लिए दु:ख भोगना, कष्ट सहन करना चाहिए। यही सत्याग्रह की कुंजी है।

पाठक **:** तब तो आप कानून के खिलाफ होते हैं! यह बेवफाई कही जाएगी। हमारी गिनती हमेशा कानून को माननेवाली प्रजा में होती है। आप तो 'एक्स्ट्रीमिस्ट' से भी आगे बढ़ते दीखते हैं। 'एक्स्ट्रीमिस्ट' कहता है कि जो कानून बन चुके हैं, उन्हें तो मानना ही चाहिए; लेकिन कानून खराब हों तो उनके बनानेवालों को मारकर भगा देना चाहिए।

संपादक **:** मैं आगे बढ़ता हूँ या पीछे रहता हूँ, इसकी परवाह न आपको होनी चाहिए, न मुझे। हम तो जो अच्छा है, उसे खोजना चाहते हैं और उसके मुताबिक बरतना चाहते हैं।

हम कानून को माननेवाली प्रजा हैं, इसका सही अर्थ तो यह है कि हम सत्याग्रही प्रजा हैं। कानून जब पसंद न आएँ तब हम कानून बनानेवालों का सिर नहीं तोड़ते, बल्कि उन्हें रद्द कराने के लिए खुद उपवास करते हैं, खुद दु:ख उठाते हैं।

हमें अच्छे या बुरे कानून को मानना चाहिए, ऐसा अर्थ तो आजकल का है। पहले ऐसा नहीं था। तब चाहे जिस कानून को लोग तोड़ते थे और उसकी सजा भोगते थे।

कानून हमें पसंद न हो, तो भी उनके मुताबिक चलना चाहिए, यह सिखावन मर्दानगी के खिलाफ है, धर्म के खिलाफ है और गुलामी की हद है।

सरकार तो कहेगी कि हम उसके सामने नंगे होकर नाचें! तो क्या हम नाचेंगे? अगर मैं सत्याग्रही होऊँ तो सरकार से कहूँगा—"यह कानून आप अपने घर में रखिए। मैं न तो आपके सामने नंगा होने वाला हूँ और न नाचने वाला हूँ।" लेकिन हम ऐसे असत्याग्रही हो गए हैं कि सरकार के जुल्म के सामने झुककर नंगे होकर नाचने से भी ज्यादा नीच काम करते हैं।

जिस आदमी में सच्ची इनसानियत है, जो खुदा से ही डरता है, वह और किसी से नहीं डरेगा। दूसरे के बनाए हुए कानून उसके लिए बंधनकारक नहीं होते। बेचारी सरकार भी नहीं कहती कि 'तुम्हें ऐसा करना ही पड़ेगा।' वह कहती है कि 'तुम ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हें सजा होगी।' हम अपनी अधम दशा के कारण मान लेते हैं कि हमें 'ऐसा ही करना चाहिए', यह हमारा फर्ज है, यह हमारा धर्म है।

अगर लोग एक बार सीख लें कि जो कानून हमें अन्यायी[5] मालूम हो, उसे मानना नामर्दगी है, तो हमें किसी का भी जुल्म बाँध नहीं सकता। यह ही स्वराज की कुंजी है।

ज्यादा लोग जो कहें उसे थोड़े लोगों को मान लेना चाहिए, यह तो अनीश्वरी[6] बात है, एक वहम है। ऐसी हजारों मिसालें मिलेंगी, जिनमें बहुतों ने जो कहा, वह गलत निकला हो और थोड़े लोगों ने जो कहा, वह सही निकला हो। सारे सुधार बहुत से लोगों के खिलाफ जाकर कुछ लोगों ने ही दाखिल करवाए हैं। ठगों के गाँव में अगर बहुत से लोग यह कहें कि ठग विद्या सीखनी ही चाहिए, तो क्या कोई साधु ठग बन जाएगा? हरगिज नहीं। अन्यायी कानून को मानना चाहिए, यह वहम जब तक दूर नहीं होता, तब तक हमारी गुलामी जाने वाली नहीं है। और इस वहम को सिर्फ सत्याग्रही ही दूर कर सकता है।

शरीर–बल का उपयोग करना, गोला–बारूद काम में लाना, हमारे सत्याग्रह के कानून के खिलाफ है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि हमें जो पसंद है वह दूसरे आदमी से हम (जबरन्) करवाना चाहते हैं। अगर यह सही हो तो फिर वह सामनेवाला आदमी भी अपनी पसंद का काम हमसे करवाने के लिए हम पर गोला–बारूद चलाने का हकदार है। इस तरह तो हम कभी एक राय पर पहुँचेंगे ही नहीं। कोल्हू के बैल की तरह आँखों पर पट्टी बाँधकर भले ही हम मान लें कि हम आगे बढ़ते हैं। दरअसल तो बैल की तरह हम गोल–गोल चक्कर ही काटते रहते हैं। जो लोग ऐसा मानते हैं कि जो कानून खुद को नापसंद है, उसे मानने के लिए आदमी बँधा हुआ नहीं है, उन्हें तो सत्याग्रह को ही सही साधन[7] माना चाहिए; वरना बड़ा विकट[8] नतीजा आएगा।

पाठक **:** आप जो कहते हैं उस पर से मुझे लगता है कि सत्याग्रह कमजोर आदमियों के लिए काफी काम का है। लेकिन जब वे बलवान बन जाएँ तब तो उन्हें तोप (हथियार) ही चलाना चाहिए?

संपादक **:** यह तो आपने बड़े अज्ञान की बात कही। सत्याग्रह सबसे बड़ा—सर्वोपरि बल है। वह जब तोप–बल से ज्यादा काम करता है, तो फिर कमजोरों का हथियार कैसे माना जाएगा? सत्याग्रह के लिए जो हिम्मत और बहादुरी चाहिए, वह तोप का बल रखनेवाले के पास हो ही नहीं सकती। क्या आप यह मानते हैं कि डरपोक और कमजोर आदमी नापसंद कानून को तोड़ सकेगा? 'एक्स्ट्रीमिस्ट' तोप–बल—पशु–बल के हिमायती हैं। वे क्यों कानून को मानने की बात कर रहे हैं? मैं उनका दोष नहीं निकालता। वे दूसरी कोई बात कर ही नहीं सकते। वे खुद जब अंग्रेजों को मारकर राज्य करेंगे तब आपसे और हमसे (जबरन) कानून मनवाना चाहेंगे। उनके तरीके के लिए यही कहना ठीक है। लेकिन सत्याग्रही तो कहेगा कि जो कानून उसे पसंद नहीं हैं, उन्हें वह स्वीकार नहीं करेगा, फिर चाहे उसे तोप के मुँह पर बाँधकर उसकी धज्जियाँ क्यों न उड़ा दी जाएँ!

आप क्या मानते हैं? तोप चलाकर सैकड़ों को मारने में हिम्मत की जरूरत है या हँसते–हँसते तोप के मुँह पर बँधकर धज्जियाँ उड़ने देने में हिम्मत की जरूरत है? खुद मौत को हथेली में रखकर जो चलता–फिरता है, वह रणवीर है या दूसरों की मौत को अपने हाथ में

रखता है वह रणवीर है?

यह निश्चित मानिए कि नामर्द आदमी घड़ी भर के लिए भी सत्याग्रही नहीं रह सकता।

हाँ, यह सही है कि शरीर से जो दुबला हो, वह भी सत्याग्रही हो सकता है। एक आदमी भी (सत्याग्रही) हो सकता है और लाखों लोग भी हो सकते हैं। मर्द भी सत्याग्रही हो सकता है; औरत भी हो सकती है। उसे अपना लश्कर तैयार करने की जरूरत नहीं रहती। उसे पहलवानों की कुश्ती सीखने की जरूरत नहीं रहती। उसने अपने मन को काबू में किया कि फिर वह वनराज–सिंह की तरह गर्जना कर सकता है; और जो उसके दुश्मन बन बैठे हैं, उनके दिल इस गर्जना से फट जाते हैं।

सत्याग्रह ऐसी तलवार है, जिसके दोनों ओर धार है। उसे चाहे जैसे काम में लिया जा सकता है। जो उसे चलाता है और जिस पर वह चलाई जाती है, वे दोनों सुखी होते हैं। वह खून नहीं निकालती, लेकिन उससे भी बड़ा परिणाम ला सकती है। उसको जंग नहीं लग सकती। उसे कोई (चुराकर) ले नहीं जा सकता। अगर सत्याग्रही दूसरे सत्याग्रही के साथ होड़ में उतरता है, तो उसमें उसे थकान लगती ही नहीं। सत्याग्रही की तलवार को म्यान की जरूरत नहीं रहती। उसे कोई छीन नहीं सकता। फिर भी सत्याग्रह को आप कमजोरों का हथियार मानें, तब तो उसे अंधेर ही कहा जाएगा।

पाठक **:** आपने कहा कि वह हिंदुस्तान का खास हथियार है। तो क्या हिंदुस्तान में तोप के बल का कभी उपयोग नहीं हुआ है?

संपादक **:** आप हिंदुस्तान का अर्थ मुट्ठी भर राजा करते हैं। मेरे मन में तो हिंदुस्तान का अर्थ वे करोड़ों किसान हैं, जिनके सहारे राजा और हम सब जी रहे हैं।

राजा तो हथियार काम में लाएँगे ही। उनका वह रिवाज ही हो गया है। उन्हें हुक्म चलाना है। लेकिन हुक्म माननेवाले को तोप–बल की जरूरत नहीं है। दुनिया के ज्यादातर लोग हुक्म माननेवाले हैं। उन्हें या तो तोप–बल या सत्याग्रह का बल सिखाना चाहिए। जहाँ वे तोप–बल सीखते हैं, वहाँ राजा–प्रजा दोनों पागल जैसे हो जाते हैं। जहाँ हुक्म माननेवालों ने सत्याग्रह करना सीखा है, वहाँ राजा का जुल्म उसकी तीन गज की तलवार से आगे नहीं जा सकता और हुक्म माननेवालों ने अन्यायी हुक्म की परवाह भी नहीं की है। किसान किसी के तलवार–बल के वश में न तो कभी हुए हैं और न होंगे। वे तलवार चलाना नहीं जानते; न किसी की तलवार से वे डरते हैं। वे मौत को हमेशा अपना तकिया बनाकर सोनेवाली महान् प्रजा हैं। उन्होंने मौत का डर छोड़ दिया है, इसलिए सबका डर छोड़ दिया है। यहाँ मैं कुछ बढ़ा–चढ़ाकर तसवीर खींचता हूँ, यह ठीक है। लेकिन हम जो तलवार के बल से चकित[9] हो गए हैं, उनके लिए यह कुछ ज्यादा नहीं है।

बात यह है कि किसानों ने, प्रजा–मंडलों ने अपने और राज्य के कारोबार में सत्याग्रह को काम में लिया है। जब राजा जुल्म करता है तब प्रजा रूठती है। यह सत्याग्रह ही है।

मुझे याद है कि एक रियासत में रैयत को अमुक हुक्म पसंद नहीं आया, इसलिए रैयत ने हिजरत करना—गाँव खाली करना—शुरू कर दिया। राजा घबड़ाए। उन्होंने रैयत से माफी माँगी और हुक्म वापस ले लिया। ऐसी मिसालें तो बहुत मिल सकती हैं। लेकिन वे ज्यादातर भारत–भूमि की ही उपज होंगी। ऐसी रैयत जहाँ है वहीं स्वराज है। इसके बिना स्वराज कुराज्य है।

पाठक **:** तो क्या आप यह कहेंगे कि शरीर को कसने की जरूरत ही नहीं है?

संपादक **:** ऐसा मैं कभी नहीं कहूँगा। शरीर को कसे बिना सत्याग्रही होना मुश्किल है। अकसर जिन शरीरों को गलत लाड़ लड़ाकर या सहलाकर कमजोर बना दिया गया है, उनमें रहनेवाला मन भी कमजोर होता है। और जहाँ मन का बल नहीं है वहाँ आत्मबल कैसे हो सकता है? हमें बाल–विवाह वगैरह के कुरिवाज को और ऐश–आराम की बुराई को छोड़कर शरीर को कसना ही होगा। अगर मैं मरियल और कमजोर आदमी को यकायक तोप के मुँह पर खड़ा हो जाने के लिए कहूँ, तो लोग मेरी हँसी उड़ाएँगे।

पाठक **:** आपके कहने से तो ऐसा लगता है कि सत्याग्रही होना मामूली बात नहीं है, और अगर ऐसा है तो कोई आदमी सत्याग्रही कैसे बन सकता है, यह आपको समझाना होगा?

संपादक **:** सत्याग्रही होना आसान है। लेकिन जितना वह आसान है, उतना ही मुश्किल भी है। चौदह बरस का एक लड़का सत्याग्रही हुआ है, यह मेरे अनुभव की बात है। रोगी आदमी सत्याग्रही हुए हैं, यह भी मैंने देखा है। मैंने यह भी देखा है कि जो लोग शरीर से बलवान थे और दूसरी बातों में भी सुखी थे, वे सत्याग्रही नहीं हो सके।

अनुभव से मैं देखता हूँ कि जो देश के भले के लिए सत्याग्रही होना चाहता है, उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, गरीबी अपनानी चाहिए, सत्य का पालन तो करना ही चाहिए और हर हालत में अभय[10] बनना चाहिए।

ब्रह्मचर्य एक महान् व्रत है, जिसके बिना मन मजबूत नहीं होता। ब्रह्मचर्य का पालन न करने से मनुष्य वीर्यवान नहीं रहता, नामर्द और कमजोर हो जाता है। जिसका मन विषय[11] में भटकता है, वह क्या शेर मारेगा? यह बात अनगिनत मिसालों से साबित की जा सकती है। तब सवाल यह उठता है कि घर–संसारी को क्या करना चाहिए? लेकिन ऐसा सवाल उठाने की कोई जरूरत नहीं। घर–संसारी ने जो संग किया (स्त्री की सोहबत की) वह विषय–भोग नहीं है, ऐसा कोई नहीं कहेगा। संतान पैदा करने के लिए ही अपनी स्त्री का संग करने की बात कही गई है। और सत्याग्रही को संतान पैदा करने की इच्छा नहीं होनी चाहिए। इसलिए संसारी होने पर भी वह ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है। यह बात ज्यादा खोलकर लिखने की जरूरत नहीं। स्त्री का क्या विचार है? यह सब कैसे हो सकता है? ऐसे विचार मन में पैदा होते हैं। फिर भी जिसे महान् कार्यों में हिस्सा लेना है, उसे तो ऐसे सवालों का हल ढूँढ़ना ही होगा।

जैसे ब्रह्मचर्य की जरूरत है वैसे ही गरीबी को अपनाने की भी जरूरत है। पैसे का लोभ और

सत्याग्रह का सेवन–पालन (दोनों साथ–साथ) कभी नहीं चल सकते। लेकिन मेरा मतलब यह नहीं है कि जिसके पास पैसा है, वह उसे फेंक दे। फिर भी पैसे के बारे में लापरवाह रहने की जरूरत है। सत्याग्रह का सेवन करते हुए अगर पैसा चला जाए, तो चिंता नहीं करनी चाहिए।

जो सत्य का सेवन नहीं करता, वह सत्य का बल, सत्य की ताकत कैसे दिखा सकेगा? इसलिए सत्य की तो पूरी–पूरी जरूरत रहेगी ही। बड़े–से–बड़ा नुकसान होने पर भी सत्य को नहीं छोड़ा जा सकता। सत्य के लिए कुछ छिपाने को होता ही नहीं। इसलिए सत्याग्रही के लिए छिपी सेना की जरूरत नहीं होती। जान बचाने के लिए झूठ बोलना चाहिए या नहीं, ऐसा सवाल यहाँ मन में नहीं उठाना चाहिए। जिसे झूठ का बचाव करना है, वही ऐसे बेकार सवाल उठाता है। जिसे सत्य की ही राह लेनी है, उसके सामने ऐसे धर्म–संकट[12] कभी आते ही नहीं। ऐसी मुश्किल हालत में आ पड़े तो भी सत्यवादी उसमें से उबर जाता है।

अभय के बिना तो सत्याग्रही की गाड़ी एक कदम भी आगे नहीं चल सकती। अभय संपूर्ण और सब बातों के लिए होना चाहिए। जमीन–जायदाद का, झूठी इज्जत का, सगे–संबंधियों का, राज–दरबार का, शरीर को पहुँचने वाली चोटों का और मरण का अभय हो, तभी सत्याग्रह का पालन हो सकता है।

यह सब करना मुश्किल है, ऐसा मानकर इसे छोड़ नहीं देना चाहिए। जो सिर पर पड़ता है उसे सह लेने की शक्ति कुदरत ने हर मनुष्य को दी है। जिसे देशसेवा न करनी हो, उसे भी ऐसे गुणों का सेवन करना चाहिए।

इसके सिवा हम यह भी समझ सकते हैं कि जिसे हथियार–बल पाना होगा, उसे भी इन बातों की जरूरत रहेगी। रणवीर होना कोई ऐसी बात नहीं कि किसी ने इच्छा की और तुरंत रणवीर हो गया। योद्धा (लड़वैया) को ब्रह्मचर्य का पालन करना होगा, भिखारी बनना होगा। रण में जिसके भीतर अभय न हो, वह लड़ नहीं सकता। उसे (योद्धा को) सत्यव्रत का पालन करने की उतनी जरूरत नहीं है, ऐसा शायद किसी को लगे। लेकिन जहाँ अभय है वहाँ सत्य कुदरती तौर पर रहता ही है। मनुष्य जब सत्य को छोड़ता है तब किसी तरह के भय के कारण ही छोड़ता है।

इसलिए इन चार गुणों[13] से डर जाने का कोई कारण नहीं है। फिर तलवारबाज को और भी कुछ बेकार कोशिशें करनी पड़ती हैं, जो सत्याग्रही को नहीं करनी पड़तीं। तलवारबाज को जो दूसरी कोशिशें करनी पड़ती हैं, उसका कारण भय है। अगर उसमें पूरी निडरता आ जाए, तो उसी पल उसके हाथ से तलवार गिर जाएगी। फिर उसे तलवार के सहारे की जरूरत नहीं रहती। जिसकी किसी से दुश्मनी नहीं है, उसे तलवार की जरूरत ही नहीं है। सिंह के सामने आने वाले एक आदमी के हाथ की लाठी अपने–आप उठ गई। उसने देखा कि अभय का पाठ उसने सिर्फ जबानी ही किया था। उसने लाठी छोड़ी और वह निर्भय–निडर बना।



: १८ :

शिक्षा

पाठक : आपने इतना सारा कहा, परंतु उसमें कहीं भी शिक्षा–तालीम की जरूरत तो बताई ही नहीं। हम शिक्षा की कमी की हमेशा शिकायत करते रहते हैं। लाजिमी तालीम देने का आंदोलन हम सारे देश में देखते हैं। महाराजा गायकवाड़ ने (अपने राज्य में) लाजिमी शिक्षा शुरू की है। उसकी ओर सबका ध्यान गया है। हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। यह सारी कोशिश क्या बेकार ही समझनी चाहिए?

संपादक : अगर हम अपनी सभ्यता[1] को सबसे अच्छी मानते हैं, तब तो मुझे अफसोस के साथ कहना पड़ेगा कि वह कोशिश ज्यादातर बेकार ही है। महाराजा साहब और हमारे दूसरे धुरंधर[2] नेता सबको तालीम देने की जो कोशिश कर रहे हैं, उसमें उनका हेतु निर्मल है। इसलिए उन्हें धन्यवाद ही देना चाहिए। लेकिन उनके हेतु का जो नतीजा आने की संभावना है, उसे हम छिपा नहीं सकते।

शिक्षा:तालीम का अर्थ क्या है? अगर उसका अर्थ सिर्फ अक्षर–ज्ञान ही हो, तो वह तो एक साधन जैसी ही हुई। उसका अच्छा उपयोग भी हो सकता है और बुरा उपयोग भी हो सकता है। एक शस्त्र[3] से चीर–फाड़ करके बीमार को अच्छा किया जा सकता है और वही शस्त्र किसी की जान लेने के लिए भी काम में लाया जा सकता है। अक्षर–ज्ञान का भी ऐसा ही है। बहुत से लोग उसका बुरा उपयोग करते हैं, यह तो हम देखते ही हैं। उसका अच्छा उपयोग प्रमाण[4] में कम ही लोग करते हैं। यह बात अगर ठीक है तो इससे यह साबित होता है कि अक्षर–ज्ञान से दुनिया को फायदे के बदले नुकसान ही हुआ है।

शिक्षा का साधारण अर्थ अक्षर–ज्ञान ही होता है। लोगों को लिखना, पढ़ना और हिसाब करना सिखाना बुनियादी या प्राथमिक—प्राइमरी—शिक्षा कहलाती है। एक किसान ईमानदारी से खुद खेती करके रोटी कमाता है। उसे मामूली तौर पर दुनियावी ज्ञान है। अपने माँ–बाप के साथ कैसे बरतना, अपनी स्त्री के साथ कैसे बरतना, बच्चों से कैसे पेश

आना, जिस देहात में वह बसा हुआ है वहाँ उसकी चाल–ढाल कैसी होनी चाहिए, इन सबका उसे काफी ज्ञान है। वह नीति के नियम समझता है और उनका पालन करता है। लेकिन वह अपने दस्तखत करना नहीं जानता। उस आदमी को आप अक्षर–ज्ञान देकर क्या करना चाहते हैं? उसके सुख में आप कौन सी बढ़ती करेंगे? क्या उसकी झोंपड़ी या उसकी हालत के बारे में आप उसके मन में असंतोष पैदा करना चाहते हैं? ऐसा करना हो, तो भी उसे अक्षर–ज्ञान देने की जरूरत नहीं है। पश्चिम के असर के नीचे आकर हमने यह बात चलाई है कि लोगों को शिक्षा देनी चाहिए। लेकिन उसके बारे में हम आगे–पीछे की बात सोचते ही नहीं।

अब ऊँची शिक्षा को लें। मैंने भूगोल–विद्या सीखी, खगोल–विद्या (आकाश के तारों की विद्या) सीखी, बीजगणित (एलजेब्रा) भी मुझे आ गया, रेखागणित (ज्यॉमेट्री) का ज्ञान भी मैंने हासिल किया, भूगर्भ–विद्या को भी मैं पी गया। लेकिन उससे क्या? उससे मैंने अपना कौन सा भला किया? अपने आस–पास के लोगों का क्या भला किया? किस मकसद से मैंने वह ज्ञान हासिल किया? उससे मुझे क्या फायदा हुआ? एक अंग्रेज विद्वान् (हक्स्ली) ने शिक्षा के बारे में यों कहा है—“उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसके शरीर को ऐसी आदत डाली गई है कि वह उसके वश में रहता है, जिसका शरीर चैन से और आसानी से सौंपा हुआ काम करता है। उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत और न्यायदर्शी[5] है। उसने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसका मन कुदरती कानूनों से भरा है और जिसकी इंद्रियाँ उसके वश में हैं, जिसके मन की भावनाएँ बिलकुल शुद्ध हैं, जिसे नीच कामों से नफरत है और जो दूसरों को अपने जैसा मानता है। ऐसा आदमी ही सच्चा शिक्षित (तालीमशुदा) माना जाएगा, क्योंकि वह कुदरत के कानून के मुताबिक चलता है। कुदरत उसका अच्छा उपयोग करेगी और वह कुदरत का अच्छा उपयोग करेगा।” अगर यही सच्ची शिक्षा हो तो मैं कसम खाकर कहूँगा कि ऊपर जो शास्त्र मैंने गिनाएँ हैं, उनका उपयोग मेरे शरीर या मेरी इंद्रियों को वश में करने के लिए मुझे नहीं करना पड़ा। इसलिए प्राइमरी–प्राथमिक शिक्षा को लीजिए या ऊँची शिक्षा को लीजिए, उसका उपयोग मुख्य बात में नहीं होता। उससे हम मनुष्य नहीं बनते, उससे हम अपना कर्तव्य[6] नहीं जान सकते।

पाठक : अगर ऐसा ही है, तो मैं आपसे एक सवाल करूँगा। आप ये जो सारी बातें कह रहे हैं, वह किसकी बदौलत कह रहे हैं? अगर आपने अक्षर–ज्ञान और ऊँची शिक्षा नहीं पाई होती, तो ये सब बातें आप मुझे कैसे समझा पाते?

संपादक : आपने अच्छी सुनाई। लेकिन आपके सवाल का मेरा जवाब भी सीधा ही है। अगर मैंने ऊँची या नीची शिक्षा नहीं पाई होती, तो मैं नहीं मानता कि मैं निकम्मा आदमी हो जाता। अब ये बातें कहकर मैं उपयोगी बनने की इच्छा रखता हूँ। ऐसा करते हुए जो कुछ मैंने पढ़ा, उसे मैं काम में लाता हूँ; और उसका उपयोग, अगर वह उपयोग हो तो, मैं अपने करोड़ों भाइयों के लिए नहीं कर सकता, सिर्फ आप जैसे पढ़े–लिखों के लिए ही कर सकता हूँ। इससे भी मेरी ही बात का समर्थन[7] होता है। मैं और आप दोनों गलत शिक्षा के पंजे में फँस गए थे। उसमें से मैं अपने को मुक्त हुआ मानता हूँ। अब वह अनुभव मैं आपको

देता हूँ और उसे देते समय ली हुई शिक्षा का उपयोग करके उसमें रही सड़न मैं आपको दिखाता हूँ।

इसके सिवा आपने जो बात मुझे सुनाई, उसमें आप गलती खा गए, क्योंकि मैंने अक्षर–ज्ञान को (हर हालत में) बुरा नहीं कहा है। मैंने तो इतना ही कहा है कि उस ज्ञान की हमें मूर्ति की तरह पूजा नहीं करनी चाहिए। वह हमारी कामधेनु[8] नहीं है। वह अपनी जगह पर शोभा दे सकता है। और वह जगह यह है—जब मैंने और आपने अपनी इंद्रियों को वश में कर लिया हो, जब हमने नीति की नींव मजबूत बना ली हो, तब अगर हमें अक्षर–ज्ञान पाने की इच्छा हो, तो उसे पाकर हम उसका अच्छा उपयोग कर सकते हैं। यह शिक्षा आभूषण[9] के रूप में अच्छी लग सकती है। लेकिन अक्षर–ज्ञान का अगर आभूषण के तौर पर ही उपयोग हो, तो ऐसी शिक्षा को लाजिमी करने की हमें जरूरत नहीं। हमारे पुराने स्कूल ही काफी हैं। वहाँ नीति को पहला स्थान दिया जाता है। वह सच्ची प्राथमिक शिक्षा है। उस पर हम जो इमारत खड़ी करेंगे, वह टिक सकेगी।

पाठक **:** तब क्या मेरा यह समझना ठीक है कि आप स्वराज के लिए अंग्रेजी शिक्षा का कोई उपयोग नहीं मानते?

संपादक **:** मेरा जवाब 'हाँ' और 'नहीं' दोनों है। करोड़ों लोगों को अंग्रेजी की शिक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मैकाले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी। उसने इसी इरादे से अपनी योजना बनाई थी, ऐसा मैं नहीं सुझाना चाहता। लेकिन उसके काम का नतीजा यही निकला है। यह कितने दु:ख की बात है कि हम स्वराज की बात भी परायी भाषा में करते हैं?

जिस शिक्षा को अंग्रेजों ने ठुकरा दिया है, वह हमारा सिंगार बनती है, यह जानने लायक है। उन्हीं के विद्वान् कहते रहते हैं कि उसमें यह अच्छा नहीं है, वह अच्छा नहीं है। वे जिसे भूल से गए हैं, उसी से हम अपने अज्ञान के कारण चिपके रहते हैं। उनमें अपनी–अपनी भाषा की उन्नति करने की कोशिश चल रही है। वेल्स इंग्लैंड का एक छोटा सा परगना है; उसकी भाषा धूल जैसी नगण्य है। ऐसी भाषा का अब जीर्णोद्धार[10] हो रहा है।

वेल्स के बच्चे वेल्श भाषा में ही बोलें, ऐसी कोशिश वहाँ चल रही है। इसमें इंग्लैंड के खजांची लॉयड जॉर्ज बड़ा हिस्सा लेते हैं। और हमारी दशा कैसी है? हम एक–दूसरे को पत्र लिखते हैं तब गलत अंग्रेजी में लिखते हैं। एक साधारण एम.ए. पास आदमी भी ऐसी गलत अंग्रेजी से बचा नहीं होता। हमारे अच्छे–से–अच्छे विचार प्रगट[11] करने का जरिया है अंग्रेजी; हमारी कांग्रेस का कारोबार भी अंग्रेजी में चलता है। अगर ऐसा लंबे अरसे तक चला, तो मेरा मानना है कि आनेवाली पीढ़ी हमारा तिरस्कार करेगी और उसका शाप[12] हमारी आत्मा को लगेगा।

आपको समझना चाहिए कि अंग्रेजी शिक्षा लेकर हमने अपने राष्ट्र को गुलाम बनाया है। अंग्रेजी शिक्षा से दंभ[13], राग[14], जुल्म वगैरह बढ़े हैं। अंग्रेजी शिक्षा पाए हुए लोगों ने प्रजा

को ठगने में, उसे परेशान करने में कुछ भी उठा नहीं रखा है। अब अगर हम अंग्रेजी शिक्षा पाए हुए लोग उसके लिए कुछ करते हैं, तो उसका हम पर जो कर्ज चढ़ा हुआ है, उसका कुछ हिस्सा ही हम अदा करते हैं।

यह क्या कम जुल्म की बात है कि अपने देश में अगर मुझे इनसाफ पाना हो, तो मुझे अंग्रेजी भाषा का उपयोग करना चाहिए! बैरिस्टर होने पर मैं स्वभाषा में बोल ही नहीं सकता! दूसरे आदमी को मेरे लिए तरजुमा कर देना चाहिए! यह कुछ कम दंभ है? यह गुलामी की हद नहीं तो और क्या है? इसमें मैं अंग्रेजों का दोष निकालूँ या अपना? हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेजी जाननेवाले लोग ही हैं। राष्ट्र की हाय अंग्रेजों पर नहीं पड़ेगी, बल्कि हम पर पड़ेगी।

लेकिन मैंने आपसे कहा कि मेरा जवाब 'हाँ' और 'ना' दोनों है। 'हाँ' कैसे, सो मैंने आपको समझाया।

अब 'ना' कैसे, यह बताता हूँ। हम सभ्यता के रोग में ऐसे फँस गए हैं कि अंग्रेजी शिक्षा बिलकुल लिये बिना अपना काम चला सकें, ऐसा समय अब नहीं रहा। जिसने वह शिक्षा पाई है, वह उसका अच्छा उपयोग करे। अंग्रेजों के साथ व्यवहार में, ऐसे हिंदुस्तानियों के साथ के व्यवहार में, जिनकी भाषा हम समझ न सकते हों और अंग्रेज खुद अपनी सभ्यता से कैसे परेशान हो गए हैं। यह समझने के लिए अंग्रेजी का उपयोग किया जाए। जो लोग अंग्रेजी पढ़े हुए हैं, उनकी संतानों को पहले तो नीति सिखानी चाहिए, उनकी मातृभाषा[15] सिखानी चाहिए और हिंदुस्तान की एक दूसरी भाषा सिखानी चाहिए। बालक जब पुख्ता (पक्की) उम्र के हो जाएँ, तब भले ही वे अंग्रेजी शिक्षा पाएँ, और वह भी उसे मिटाने के इरादे से, न कि उसके जरिए पैसे कमाने के इरादे से। ऐसा करते हुए भी हमें यह सोचना होगा कि अंग्रेजी में क्या सीखना चाहिए और क्या नहीं सीखना चाहिए। कौन से शास्त्र पढ़ने चाहिए, यह भी हमें सेचना होगा। थोड़ा विचार करने से ही हमारी समझ में आ जाएगा कि अगर अंग्रेजी डिग्री लेना हम बंद कर दें, तो अंग्रेज हाकिम चौकेंगे।

पाठक **:** तब कैसी शिक्षा दी जाए?

संपादक **:** उसका जवाब ऊपर कुछ हद तक आ गया है। फिर भी इस सवाल पर हम और विचार करें। मुझे तो लगता है कि हमें अपनी सभी भाषाओं को उज्ज्वल–शानदार बनाना चाहिए। हमें अपनी भाषा में ही शिक्षा लेनी चाहिए—इसके क्या मानी हैं, इसे ज्यादा समझाने का यह स्थान नहीं है। जो अंग्रेजी पुस्तकें काम की हैं, उनका हमें अपनी भाषा में अनुवाद करना होगा। बहुत से शास्त्र सीखने का दंभ और वहम हमें छोड़ना होगा। सबसे पहले तो धर्म की शिक्षा या नीति की शिक्षा दी जानी चाहिए। हर एक पढ़े–लिखे हिंदुस्तानी को अपनी भाषा का, हिंदू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को फारसी का और सबको हिंदी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिंदुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों व पारसियों को संस्कृत सीखनी चाहिए। उत्तरी और पश्चिमी हिंदुस्तान के लोगों को तमिल सीखनी चाहिए। सारे हिंदुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिंदी

ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए। हिंदू–मुसलमानों के संबंध ठीक रहें, इसलिए बहुत से हिंदुस्तानियों का इन दोनों लिपियों को जान लेना जरूरी है। ऐसा होने से हम आपस के व्यवहार से अंग्रेजी को निकाल सकेंगे।

और यह सब किसलिए जरूरी है? हम जो गुलाम बन गए हैं, उनके लिए। हमारी गुलामी की वजह से देश की प्रजा गुलाम बनी है। अगर हम गुलामी से छूट जाएँ, तो प्रजा तो छूट ही जाएगी।

पाठक **:** आपने जो धर्म की शिक्षा की बात कही, वह बड़ी कठिन है।

संपादक **:** फिर भी उसके बिना हमारा काम नहीं चल सकता। हिंदुस्तान कभी नास्तिक नहीं बनेगा। हिंदुस्तान की भूमि में नास्तिक फल–फूल नहीं सकते। बेशक, यह काम मुश्किल है। धर्म की शिक्षा का खयाल करते ही सिर चकराने लगता है। धर्म के आचार्य दंभी और स्वार्थी[16] मालूम होते हैं। उनके पास पहुँचकर हमें नम्र भाव से उन्हें समझाना होगा। उसकी कुंजी मुल्लों, दस्तूरों और ब्राह्मणों के हाथ में है। लेकिन उनमें अगर सद्बुद्धि पैदा न हो, तो अंग्रेजी शिक्षा के कारण हममें जो जोश पैदा हुआ है, उसका उपयोग करके हम लोगों को नीति की शिक्षा दे सकते हैं। यह कोई बहुत मुश्किल बात नहीं है। हिंदुस्तानी सागर के किनारे पर ही मैल जमा है। उस मैल से जो गंदे हो गए हैं, उन्हें साफ होना है। हम लोग ऐसे ही हैं और खुद ही बहुत कुछ साफ हो सकते हैं। मेरी यह टीका करोड़ों लोगों के बारे में नहीं है। हिंदुस्तान को असली रास्ते पर लाने के लिए हमें ही असली रास्ते पर आना होगा। बाकी करोड़ों लोग जो असली रास्ते पर ही हैं, उनमें सुधार, बिगाड़, उन्नति[17], अवनति[18] समय के अनुसार होते ही रहेंगे। पश्चिम की सभ्यता को निकाल बाहर करने की ही हमें कोशिश करनी चाहिए। दूसरा सब अपने आप ठीक हो जाएगा।



: १९ :

मशीनें

पाठक **:** आप पश्‌चिम की सभ्यता को निकाल बाहर करने की बात कहते हैं, तब तो आप यह भी कहेंगे कि हमें कोई भी मशीन नहीं चाहिए?

संपादक **:** मुझे जो चोट लगी थी, उसे यह सवाल करके आपने ताजा कर दिया है। मि. रमेशचंद्र दत्त की पुस्तक 'हिंदुस्तान का आर्थिक इतिहास' जब मैंने पढ़ी, तब भी मेरी ऐसी हालत हो गई थी। उसका फिर से विचार करता हूँ, तो मेरा दिल भर आता है। मशीन की झपट लगने से ही हिंदुस्तान पामाल हो गया है। मैनचेस्टर ने हमें जो नुकसान पहुँचाया है, उसकी तो कोई हद ही नहीं है। हिंदुस्तान से कारीगरी, जो करीब–करीब खत्म हो गई, वह मैनचेस्टर का ही काम है।

लेकिन मैं भूलता हूँ। मैनचेस्टर को दोष कैसे दिया जा सकता है? हमने उसके कपड़े पहने, तभी तो उसने कपड़े बनाए। बंगाल की बहादुरी का वर्णन[1] जब मैंने पढ़ा, तब मुझे हर्ष[2] हुआ। बंगाल में कपड़े की मिलें नहीं हैं, इसलिए लोगों ने अपना असली धंधा फिर से हाथ में ले लिया। बंगाल बंबई की मिलों को बढ़ावा देता है, वह ठीक ही है; लेकिन अगर बंगाल ने तमाम मशीनों से परहेज किया होता, उनका बॉयकाट–बहिष्कार किया होता, तो और भी अच्छा होता।

मशीनें यूरोप को उजाड़ने लगी हैं और वहाँ की हवा अब हिंदुस्तान में चल रही है। यंत्र आज की सभ्यता की मुख्य निशानी है और वह महापाप है, ऐसा मैं तो साफ देख सकता हूँ।

बंबई की मिलों में जो मजदूर काम करते हैं, वे गुलाम बन गए हैं। जो औरतें उनमें काम करती हैं, उनकी हालत देखकर कोई भी काँप उठेगा। जब मिलों की वर्षा नहीं हुई थी, तब वे औरतें भूखों नहीं मरती थीं। मशीन की यह हवा अगर ज्यादा चली, तो हिंदुस्तान की बुरी दशा होगी। मेरी बात आपको कुछ मुश्किल मालूम होती होगी। लेकिन मुझे कहना चाहिए कि हम हिंदुस्तान में मिलें कायम करें, उसके बजाय हमारा भला इसी में है कि हम

मैनचेस्टर को और भी रुपए भेजकर उसका सड़ा हुआ कपड़ा काम में लें; क्योंकि उसका कपड़ा काम में लेने से सिर्फ हमारे पैसे ही जाएँगे। हिंदुस्तान में अगर हम मैनचेस्टर कायम करेंगे तो पैसा हिंदुस्तान में ही रहेगा, लेकिन वह पैसा हमारा खून चूसेगा; क्योंकि वह हमारी नीति को बिलकुल खत्म कर देगा। जो लोग मिलों में काम करते हैं, उनकी नीति कैसी है, वह उन्हीं से पूछा जाए। उनमें से जिन्होंने रुपए जमा किए हैं, उनकी नीति दूसरे पैसेवालों से अच्छी नहीं हो सकती। अमरीका के रॉकफेलरों से हिंदुस्तान के रॉकफेलर कुछ कम हैं, ऐसा मानना निरा अज्ञान है। गरीब हिंदुस्तान तो गुलामी से छूट सकेगा, लेकिन अनीति से पैसेवाला बना हुआ हिंदुस्तान गुलामी से कभी नहीं छूटेगा।

मुझे तो लगता है कि हमें यह स्वीकार करना होगा कि अंग्रेजी राज्य को यहाँ टिकाए रखनेवाले ये धनवान लोग ही हैं। ऐसी स्थिति में ही उनका स्वार्थ सधेगा। पैसा आदमी को दीन[3] बना देता है। ऐसी दूसरी चीज दुनिया में विषय–भोग[4] है। ये दोनों विषय[5] विषम[6] हैं। उनका डंक साँप के डंक से ज्यादा जहरीला है। जब साँप काटता है तो हमारा शरीर लेकर हमें छोड़ देता है। जब पैसा या विषय काटता है तब वह शरीर, ज्ञान, मन सबकुछ ले लेता है, तो भी हमारा छुटकारा नहीं होता। इसलिए हमारे देश में मिलें कायम हों, इसमें खुश होने जैसा कुछ नहीं है।

पाठक **:** तब क्या मिलों को बंद कर दिया जाए?

संपादक **:** यह बात मुश्किल है। जो चीज स्थायी या मजबूत हो गई है, उसे निकालना मुश्किल है। इसीलिए काम शुरू न करना पहली बुद्धिमानी है।[*] मिल–मालिकों की ओर हम नफरत की निगाह से नहीं देख सकते। हमें उन पर दया करनी चाहिए। वे यकायक मिलें छोड़ दें, यह तो मुमकिन नहीं है; लेकिन हम उनसे ऐसी विनती कर सकते हैं कि वे अपने इस साहस को बढ़ाएँ नहीं। अगर वे देश का भला करना चाहें, तो खुद अपना काम धीरे–धीरे कम कर सकते हैं। वे खुद पुराने, प्रौढ़, पवित्र चरखे देश के हजारों घरों में दाखिल कर सकते हैं और लोगों का बुना हुआ कपड़ा लेकर उसे बेच सकते हैं।

अगर वे ऐसा न करें तो भी लोग खुद मशीनों का कपड़ा इस्तेमाल करना बंद कर सकते हैं।

पाठक **:** यह तो कपड़े के बारे में हुआ। लेकिन यंत्र की बनी तो अनेक चीजें हैं। वे चीजें या तो हमें परदेश से लेनी होंगी या ऐसे यंत्र हमारे देश में दाखिल करने होंगे?

संपादक **:** सचमुच हमारे देव (मूर्तियाँ) भी जर्मनी के यंत्रों में बनकर आते हैं; तो फिर दियासलाई या आलपिन से लेकर काँच के झाड़–फानूस की तो बात ही क्या? मेरा अपना जवाब तो एक ही है। जब ये सब चीजें यंत्र से नहीं बनती थीं तब हिंदुस्तान क्या करता था? वैसा ही वह आज भी कर सकता है। जब तक हम हाथ से आलपिन नहीं बनाएँगे, तब तक उसके बिना हम अपना काम चला लेंगे। झाड़–फानूस को आग लगा देंगे। मिट्टी के दीये में तेल डालकर और हमारे खेत में पैदा हुई रुई की बत्ती बनाकर दीया जलाएँगे। ऐसा करने से हमारी आँखें (खराब होने से) बचेंगी, पैसे बचेंगे और हम स्वदेशी रहेंगे, बनेंगे और स्वराज

की धूनी जमाएँगे।

यह सारा काम सब लोग एक ही समय में करेंगे या एक ही समय में कुछ लोग यंत्र की सब चीजें छोड़ देंगे, यह संभव नहीं है। लेकिन अगर यह विचार सही होगा, तो हम हमेशा शोध–खोज करते रहेंगे और हमेशा थोड़ी–थोड़ी चीजें छोड़ते जाएँगे। अगर हम ऐसा करेंगे तो दूसरे लोग भी ऐसा करेंगे। पहले तो यह विचार जड़ पकड़े, यह जरूरी है; बाद में उसके मुताबिक काम होगा। पहले एक ही आदमी करेगा, फिर सौ—यों नारियल की कहानी की तरह लोग बढ़ते ही जाएँगे। बड़े लोग जो काम करते हैं, उसे छोटे भी करते हैं और करेंगे। समझें तो बात छोटी और सरल है। आपको और मुझे दूसरों के करने की राह नहीं देखनी है। हम तो ज्यों ही समझ लें, त्यों ही उसे शुरू कर दें। जो नहीं करेगा, वह खोएगा। समझते हुए भी जो नहीं करेगा, वह निरा दंभी कहलाएगा।

पाठक **:** ट्रामगाड़ी और बिजली की बत्ती का क्या होगा?

संपादक **:** यह सवाल आपने बहुत देर से किया। इस सवाल में अब कोई जान नहीं रही। रेल ने अगर हमारा नाश किया है, तो क्या ट्राम नहीं करती? यंत्र तो साँप का ऐसा बिल है, जिसमें एक नहीं बल्कि सैकड़ों साँप होते हैं। एक के पीछे दूसरा लगा ही रहता है। जहाँ यंत्र होंगे वहाँ बड़े शहर होंगे। जहाँ बड़े शहर होंगे वहाँ ट्रामगाड़ी और रेलगाड़ी होगी। वहीं बिजली की बत्ती की जरूरत रहती है। आप जानते होंगे कि विलायत में भी देहातों में बिजली की बत्ती या ट्राम नहीं है। प्रामाणिक[7] वैद्य और डॉक्टर आपको बताएँगे कि जहाँ रेलगाड़ी, ट्रामगाड़ी वगैरह साधन[8] बढ़े हैं, वहाँ लोगों की तंदुरुस्ती गिरी हुई होती है। मुझे याद है कि यूरोप के एक शहर में जब पैसे की तंगी हो गई थी तब ट्रामों, वकीलों और डॉक्टरों की आमदनी घट गई थी, लेकिन लोग तंदुरुस्त हो गए थे।

यंत्र का गुण तो मुझे एक भी याद नहीं आता, जबकि उसके अवगुणों से मैं पूरी किताब लिख सकता हूँ।

पाठक **:** यह सारा लिखा हुआ यंत्र की मदद से छापा जाएगा और उसकी मदद से बाँटा जाएगा, यह यंत्र का गुण है या अवगुण?

संपादक **:** यह 'जहर की दवा जहर है' की मिसाल है। इसमें यंत्र का कोई गुण नहीं है। यंत्र मरते–मरते कह जाता है कि 'मुझ से बचिए, होशियार रहिए; मुझसे आपको कोई फायदा नहीं होने का।' अगर ऐसा कहा जाए कि यंत्र ने इतनी ठीक कोशिश की, तो यह भी उन्हीं के लिए लागू होता है, जो यंत्र के जाल में फँसे हुए हैं।

लेकिन मूल बात न भूलिएगा। मन में यह तय कर लेना चाहिए कि यंत्र खराब चीज है। बाद में हम उसका धीरे–धीरे नाश करेंगे। ऐसा कोई सरल[9] रास्ता कुदरत ने ही नहीं बनाया है कि जिस चीज की हमें इच्छा हो, वह तुरंत मिल जाए। यंत्र के ऊपर हमारी मीठी नजर के बजाय जहरीली नजर पड़ेगी, तो आखिर वह जाएगा ही।



: २० :

छुटकारा

पाठक : आपके विचारों से ऐसा लगता है कि आप एक तीसरा ही पक्ष कायम करना चाहते हैं। आप एक्स्ट्रीमिस्ट भी नहीं हैं और मॉडरेट भी नहीं हैं?

संपादक : यहाँ आपसे भूल होती है। मेरे मन में तीसरे पक्ष का कोई खयाल नहीं है। सबके विचार एक से नहीं रहते। मॉडरेटों में भी सब एक ही विचार के हैं, ऐसा नहीं मानना चाहिए। जिसे (लोगों की) सेवा ही करनी है, उसके लिए पक्ष कैसा? मैं तो मॉडरेटों की सेवा करूँगा और एक्स्ट्रीमिस्टों की भी करूँगा। जहाँ उनके विचार से मेरी राय अलग पड़ेगी, वहाँ मैं उन्हें नम्रता से बताऊँगा और अपना काम करता चलूँगा।

पाठक : अगर आप दोनों से कहना चाहें तो क्या कहेंगे?

संपादक : एक्स्ट्रीमिस्टों से मैं कहूँगा कि आपका हेतु हिंदुस्तान के लिए स्वराज हासिल करने का है। स्वराज आपकी कोशिश से मिलने वाला नहीं है। स्वराज तो सबको अपने लिए पाना चाहिए और सबको उसे अपना बनाना चाहिए। दूसरे लोग जो स्वराज दिला दें, वह स्वराज नहीं है, बल्कि परराज्य है। इसलिए सिर्फ अंग्रेजों को बाहर निकाला कि आपने स्वराज पा लिया, ऐसा अगर आप मानते हों, तो वह ठीक नहीं है। सच्चा स्वराज जो मैंने पहले बताया, वही होना चाहिए। उसे आप गोला–बारूद से कभी नहीं पाएँगे। गोला–बारूद हिंदुस्तान को सधेगा नहीं। इसलिए सत्याग्रह पर ही भरोसा रखिए। मन में ऐसा शक भी पैदा न होने दीजिए कि स्वराज पाने के लिए हमें गोला–बारूद की जरूरत है।

मॉडरेटों से मैं कहूँगा कि हम खाली आजिजी करना चाहें, यह तो हमारी हीनता[1]होगी। उसमें हम अपना हलकापन कबूल करते हैं। 'अंग्रेजों से संबंध रखना हमारे लिए जरूरी है' ऐसा कहना हमारे लिए ईश्वर के चोर बनने जैसा हो जाता है। हमें ईश्वर के सिवा और किसी की जरूरत है, ऐसा कहना ठीक नहीं है। और साधारण विचार करने से भी हमें लगेगा कि 'अंग्रेजों के बिना आज तो हमारा काम चलेगा ही नहीं,' ऐसा कहना अंग्रेजों को

अभिमानी बनाने जैसा होगा।

अंग्रेज बोरिया–बिस्तर बाँधकर अगर चले जाएँगे, तो हिंदुस्तान अनाथ हो जाएगा, ऐसा नहीं मानना चाहिए। अगर वे गए तो संभव है कि जो लोग उनके दबाव से चुप रहे होंगे, वे लड़ेंगे। फोड़े को दबाकर रखने से कोई फायदा नहीं। उसे तो फूटना ही चाहिए। इसलिए अगर हमारे भाग्य में आपस में लड़ना ही लिखा होगा तो हम लड़ मरेंगे। उसमें कमजोर को बचाने के बहाने किसी दूसरे को बीच में पड़ने की जरूरत नहीं है। इसी से तो हमारा सत्यानाश हुआ है। इस तरह कमजोर को बचाना उसे और भी कमजोर बनाने जैसा है। मॉडरेटों को इस बात पर अच्छी तरह विचार करना चाहिए। इसके बिना स्वराज प्राप्त नहीं हो सकता। मैं उन्हें एक अंग्रेज पादरी के शब्दों की याद दिलाऊँगा—''स्वराज में अंधाधुंधी बरदाश्त की जा सकती है, लेकिन परराज्य की व्यवस्था[2] हमारी कंगाली को बताती है।'' सिर्फ उस पादरी के स्वराज का और हिंदुस्तान के स्वराज का अर्थ अलग है। हम किसी का भी जुल्म या दबाव नहीं चाहते—चाहे वह गोरा हो या हिंदुस्तानी हो। हम सबको तैरना सीखना और सिखाना है।

अगर ऐसा हो तो एक्स्ट्रीमिस्ट और मॉडरेट दोनों मिलेंगे—मिल सकेंगे—दोनों को मिलना चाहिए; दोनों को एक–दूसरे का डर रखने की या अविश्वास करने की जरूरत नहीं है।

पाठक **:** इतना तो आप दोनों पक्षों से कहेंगे, परंतु अंग्रेजों से क्या कहेंगे?

संपादक **:** उनसे मैं विनयपूर्वक कहूँगा कि आप हमारे राजा जरूर हैं। आप अपनी तलवार से हमारे राजा हैं या हमारी इच्छा से, इस सवाल की चर्चा मुझे करने की जरूरत नहीं। आप हमारे देश में रहें, इसका भी मुझे द्वेष[3] नहीं है। लेकिन राजा होते हुए भी आपको हमारे नौकर बनकर रहना होगा। आपका कहा हमें नहीं, बल्कि हमारा कहा आपको करना होगा। आज तक आप इस देश से जो धन ले गए, वह भले आपने हजम कर लिया। लेकिन अब आगे आपका ऐसा करना हमें पसंद नहीं होगा। आप हिंदुस्तान में सिपाहीगिरी करना चाहें तो रह सकते हैं। हमारे साथ व्यापार करने का लालच आपको छोड़ना होगा। जिस सभ्यता की आप हिमायत करते हैं, उसे हम नुकसानदेह मानते हैं। अपनी सभ्यता को हम आपकी सभ्यता से कहीं ज्यादा ऊँची समझते हैं। आपको भी ऐसा लगे तो उसमें आपका लाभ ही है। लेकिन ऐसा न लगे, तो भी आपको आपकी कहावत[*] के मुताबिक हमारे देश में हिंदुस्तानी होकर रहना होगा। आपको ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए, जिससे हमारे धर्म को बाधा पहुँचे। राजकर्ता होने के नाते आपका फर्ज है कि हिंदुओं की भावना का आदर करने के लिए आप गाय का मांस खाना छोड़ दें और मुसलमानों की खातिर बुरे जानवर—(सूअर) का मांस खाना छोड़ दें। हम दब गए थे, इसलिए बोल नहीं सके, लेकिन आप ऐसा न समझें कि आपके इस बरताव से हमारी भावनाओं को चोट नहीं पहुँची है। हम स्वार्थ या दूसरे भय से आज तक कह नहीं सके, लेकिन अब यह कहना हमारा फर्ज हो गया है। हम मानते हैं कि आपकी कायम की हुई शालाएँ और अदालतें हमारे किसी काम की नहीं हैं। उनके बजाय हमारी पुरानी असली शालाएँ और अदालतें ही हमें चाहिए।

हिंदुस्तान की आम भाषा अंग्रेजी नहीं बल्कि हिंदी है। वह आपको सीखनी होगी और हम तो आपके साथ अपनी भाषा में ही व्यवहार करेंगे।

आप रेलवे और फौज के लिए बेशुमार रुपए खर्च करते हैं, यह हमसे देखा नहीं जाता। हमें उसकी जरूरत नहीं मालूम होती। रूस का डर आपको होगा, हमें नहीं है। रूसी आएँगे, तब हम उनसे निबट लेंगे; आप होंगे तो हम दोनों मिलकर उनसे निबट लेंगे। हमें विलायती या यूरोपी कपड़ा नहीं चाहिए। इस देश में पैदा होने वाली चीजों से ही हम अपना काम चला लेंगे। आपकी एक आँख मैनचेस्टर पर और दूसरी हम पर रहे, यह अब नहीं पुसाएगा। आपका और हमारा स्वार्थ एक ही है, इस तरह आप बरतेंगे, तभी हमारा साथ बना रह सकता है।

आपसे यह सब हम बेअदबी से नहीं कह रहे हैं। आपके पास हथियार–बल है, भारी जहाजी सेना है। उसके खिलाफ वैसी ही ताकत से हम नहीं लड़ सकते। लेकिन आपको अगर ऊपर कही गई बात मंजूर न हो, तो आपसे हमारी नहीं बनेगी। आपकी मरजी में आए तो, और मुमकिन हो तो आप हमें तलवार से काट सकते हैं, मरजी में आए तो हमें तोप से उड़ा सकते हैं। हमें जो पसंद नहीं है वह अगर आप करेंगे, तो हम आपकी मदद नहीं करेंगे; और बगैर हमारी मदद के आप एक कदम भी नहीं चल सकेंगे।

संभव है कि अपनी सत्ता के मद में हमारी इस बात को आप हँसी में उड़ा दें। आपका हँसना बेकार है, ऐसा आज शायद हम नहीं दिखा सकें। लेकिन अगर हममें कुछ दम होगा, तो आप देखेंगे कि आपका मद[4] बेकार है और आपका हँसना (विनाश–काल की) विपरीत[5] बुद्धि की निशानी है।

हम मानते हैं कि आप स्वभाव से धार्मिक राष्ट्र की प्रजा हैं। हम तो धर्म स्थान में ही बसे हुए हैं। आपका और हमारा कैसे साथ हुआ, इसमें उतरना फिजूल है। लेकिन अपने इस संबंध का हम दोनों अच्छा उपयोग कर सकते हैं।

आप हिंदुस्तान में आनेवाले जो अंग्रेज हैं, वे अंग्रेज प्रजा के सच्चे नमूने नहीं हैं; और हम जो आधे अंग्रेज जैसे बन गए हैं, वे भी सच्ची हिंदुस्तानी प्रजा के नमूने नहीं कहे जा सकते। अंग्रेज प्रजा को अगर आपकी करतूतों के बारे में सब मालूम हो जाए, तो वह आपके कामों के खिलाफ हो जाए। हिंद की प्रजा ने तो आपसे संबंध थोड़ा ही रखा है। आप अपनी सभ्यता को, जो दरअसल बिगाड़ करने वाली है, छोड़कर अपने धर्म की छानबीन करेंगे, तो आपको लगेगा कि हमारी माँग ठीक है। इसी तरह आप हिंदुस्तान में रह सकते हैं। अगर उस ढंग से आप यहाँ रहेंगे तो आपसे हमें जो थोड़ा सीखना है, वह हम सीखेंगे और हमसे आपको जो बहुत सीखना है, वह आप सीखेंगे। इस तरह हम (एक–दूसरे से) लाभ उठाएँगे और सारी दुनिया को लाभ पहुँचाएँगे। लेकिन यह तो तभी हो सकता है जब हमारे संबंध की जड़ धर्म क्षेत्र में जमे।

पाठक **:** राष्ट्र से आप क्या कहेंगे?

संपादक **:** राष्ट्र कौन?

पाठक **:** अभी तो आप जिस अर्थ में यह शब्द काम में लेते हैं, उसी अर्थवाला राष्ट्र, यानि जो लोग यूरोप की सभ्यता में रँगे हुए हैं, जो स्वराज की आवाज उठा रहे हैं।

संपादक **:** इस राष्ट्र से मैं कहूँगा कि जिस हिंदुस्तानी को (स्वराज की) सच्ची खुमारी यानी मस्ती चढ़ी होगी, वही अंग्रेजों से ऊपर की बात कह सकेगा और उनके रोब से नहीं दबेगा।

सच्ची मस्ती तो उसी को चढ़ सकती है, जो ज्ञानपूर्वक—समझ–बूझकर—यह मानता हो कि हिंद की सभ्यता सबसे अच्छी है और यूरोप की सभ्यता चार दिन की चाँदनी है। वैसे सभ्यताएँ तो आज तक कई हो गईं और मिट्टी में मिल गईं, आगे भी कई होंगी और मिट्टी में मिल जाएँगी।

सच्ची खुमारी उसी को हो सकती है, जो आत्मबल अनुभव करके शरीर–बल से नहीं दबेगा और निडर रहेगा तथा सपने में भी तोप–बल का उपयोग करने की बात नहीं सोचेगा।

सच्ची खुमारी उसी हिंदुस्तानी को रहेगी, जो आज की लाचार हालत से बहुत ऊब गया होगा और जिसने पहले से ही जहर का प्याला पी लिया होगा।

ऐसा हिंदुस्तानी अगर एक ही होगा, तो वह भी ऊपर की बात अंग्रेजों से कहेगा और अंग्रेजों को उसकी बात सुननी पड़ेगी।

ऊपर की माँग माँग नहीं है; वह हिंदुस्तानियों के मन की दशा को बताती है। माँगने से कुछ नहीं मिलेगा; वह तो हमें खुद लेना होगा। उसे लेने की हम में ताकत होनी चाहिए। यह ताकत उसी में होगी—

(१) जो अंग्रेजी भाषा का उपयोग लाचारी से ही करेगा।

(२) जो वकील होगा तो अपनी वकालत छोड़ देगा और खुद घर में चरखा चलाकर कपड़े बुन लेगा।

(३) जो वकील होने के कारण अपने ज्ञान का उपयोग सिर्फ लोगों को समझाने और उन की आँखें खोलने में करेगा।

(४) जो वकील होकर वादी–प्रतिवादी—मुद्दई और मुद्दालेह—के झगड़ों में नहीं पड़ेगा, अदालतों को छोड़ देगा और अपने अनुभव से दूसरों को अदालतें छोड़ने के लिए समझाएगा।

(५) जो वकील होते हुए भी जैसे वकालत छोड़ेगा वैसे न्यायाधीशपन[6] भी छोड़ेगा।

(६) जो डॉक्टर होते हुए भी अपना पेशा छोड़ेगा और समझेगा कि लोगों की चमड़ी चोंथने के बजाय बेहतर है कि उनकी आत्मा को छुआ जाए और उसके बारे में शोध–खोज करके

उन्हें तंदुरुस्त बनाया जाए।

(७) जो डॉक्टर होने से समझेगा कि खुद चाहे जिस धर्म का हो, लेकिन अंग्रेजी वैद्यकशालाओं—फार्मेसियों—में जीवों पर जो निर्दयता की जाती है, वैसी निर्दयता से (बनी हुई दवाओं से) शरीर को चंगा करने के बजाय बेहतर है कि शरीर रोगी रहे।

(८) जो डॉक्टर होने पर भी खुद चरखा चलाएगा और जो लोग बीमार होंगे, उन्हें उनकी बीमारी का सही कारण बताकर उसे दूर करने के लिए कहेगा; निकम्मी दवाएँ देकर उन्हें गलत लाड़ नहीं लड़ाएगा। वह तो यही समझेगा कि निकम्मी दवाएँ न लेने से बीमार की देह अगर गिर भी जाए, तो उससे दुनिया अनाथ नहीं हो जाएगी, और यही मानेगा कि उसने बीमार पर सच्ची दया की है।

(९) जो धनी होने पर भी धन की परवाह किए बिना अपने मन में होगा वही कहेगा और बड़े–से–बड़े सत्ताधीश की भी परवाह न करेगा।

(१०) जो धनी होने से अपना रुपया चरखे चालू करने में खरचेगा और खुद सिर्फ स्वदेशी माल का इस्तेमाल करके दूसरों को भी ऐसा करने के लिए बढ़ावा देगा।

(११) दूसरे हर हिंदुस्तानी की तरह जो यह समझेगा कि यह समय पश्चात्ताप[7] का, प्रायश्चित्त[8] का और शोक[9]का है।

(१२) जो दूसरे हर हिंदुस्तानी की तरह यह समझेगा कि अंग्रेजों का कसूर निकालना बेकार है। हमारे कसूर की वजह से वे हिंदुस्तान में आए, हमारे कसूर के कारण ही वे यहाँ रहते हैं और हमारा कसूर दूर होगा तब वे यहाँ से चले जाएँगे या बदल जाएँगे।

(१३) दूसरे हिंदुस्तानियों की तरह जो यह समझेगा कि मातम के वक्त मौज–शौक नहीं हो सकते। जब तक हमें चैन नहीं है तब तक हमारा जेल में रहना या देश–निकाला भोगना ही ठीक है।

(१४) जो दूसरे हिंदुस्तानियों की तरह यह समझेगा कि लोगों को समझाने के बहाने जेल में न जाने की खबरदारी रखना निरा मोह है।

(१५) जो दूसरे हिंदुस्तानियों की तरह यह समझेगा कि कहने से करने का असर अद्भुत होता है; हम निडर होकर जो मन में है, वही कहेंगे और इस तरह कहने का जो नतीजा आए, उसे सहेंगे, तभी हम अपने कहने का असर दूसरों पर डाल सकेंगे।

(१६) जो दूसरे हिंदुस्तानियों की तरह यह समझेगा कि हम दुःख सहन करके ही बंधन यानि गुलामी से छूट सकेंगे।

(१७) जो दूसरे हिंदुस्तानियों की तरह समझेगा कि अंग्रेजों की सभ्यता को बढ़ावा देकर हमने जो पाप किया है, उसे धो डालने के लिए अगर हमें मरने तक भी अंदमान में रहना

पड़े, तो वह कुछ ज्यादा नहीं होगा।

(१८) जो दूसरे हिंदुस्तानियों की तरह समझेगा कि कोई भी राष्ट्र दु:ख सहन किए बिना ऊपर चढ़ा नहीं है। लड़ाई के मैदान में भी दु:ख ही कसौटी होता है, न कि दूसरे को मारना। सत्याग्रह के बारे में भी ऐसा ही है।

(१९) जो दूसरे हिंदुस्तानियों की तरह समझेगा कि यह कहना कुछ न करने के लिए एक बहाना भर है कि 'जब सब लोग करेंगे तब हम भी करेंगे'। हमें ठीक लगता है, इसलिए हम करें, जब दूसरों को ठीक लगेगा तब वे करेंगे—यही करने का सच्चा रास्ता है। अगर मैं स्वादिष्ट[10] भोजन देखता हूँ, तो उसे खाने के लिए दूसरे की राह नहीं देखता। ऊपर कहे मुताबिक प्रयत्न[11] करना, दु:ख सहना यह स्वादिष्ट भोजन है। ऊबकर लाचारी से करना या दु:ख सहना निरी बेगार है।

पाठक **:** सब ऐसा कब करेंगे और कब उसका अंत आएगा?

संपादक **:** आप फिर भूलते हैं। सबकी न तो मुझे परवाह है, न आपको होनी चाहिए। 'आप अपना देख लीजिए, मैं अपना देख लूँगा'—यह स्वार्थ–वचन माना जाता है, लेकिन यह परमार्थ–वचन भी है। मैं अपना उजालूँगा—अपना भला करूँगा, तभी दूसरे का भला कर सकूँगा। अपना कर्तव्य[12] मैं कर लूँ, इसी में काम की सारी सिद्धियाँ समाई हुई हैं।

आपको विदा करने से पहले फिर एक बार मैं यह दोहराने की इजाजत चाहता हूँ कि (१) अपने मन का राज्य स्वराज है।

(२) उसकी कुंजी सत्याग्रह, आत्मबल या करुणाबल है।

(३) उस बल को आजमाने के लिए स्वदेशी को पूरी तरह अपनाने की जरूरत है।

(४) हम जो करना चाहते हैं, वह अंग्रेजों के लिए (हमारे मन में) द्वेष है, इसलिए या उन्हें सजा देने के लिए नहीं करें, बल्कि इसलिए करें कि ऐसा करना हमारा कर्तव्य है। मतलब यह कि अंग्रेज अगर नमक–महसूल रद्द कर दें, लिया हुआ धन वापस कर दें, सब हिंदुस्तानियों को बड़े–बड़े ओहदे दे दें और अंग्रेजी लश्कर हटा लें, तो हम उनकी मिलों का कपड़ा पहनेंगे या अंग्रेजी भाषा काम में लाएँगे, या उनकी हुनर–कला का उपयोग करेंगे, सो बात नहीं है। हमें यह समझना चाहिए कि वह सब दरअसल नहीं करने जैसा है, इसलिए हम उसे नहीं करेंगे।

मैंने जो कुछ कहा है, वह अंग्रेजों के लिए द्वेष होने के कारण नहीं, बल्कि उनकी सभ्यता के लिए द्वेष होने के कारण कहा है।

मुझे लगता है कि हमने स्वराज का नाम तो लिया, लेकिन उसका स्वरूप हम नहीं समझे हैं। मैंने उसे जैसा समझा है, वैसा यहाँ बताने की कोशिश की है।

मेरा मन गवाही देता है कि ऐसा स्वराज पाने के लिए मेरा यह शरीर समर्पित[13] है।

परिशिष्ट—१

‘हिंद स्वराज’ के हिंदी अनुवाद के लिए गांधीजी ने जो प्रस्तावना लिखी थी, उसमें उन्होंने मिलों के बारे में नीचे की बात कही थी—

“यह पुस्तक मैंने सन् १९०९ में लिखी थी। १२ वर्ष के अनुभव के बाद भी मेरे विचार जैसे उस समय थे वैसे ही आज हैं। मैं आशा करता हूँ कि पाठक मेरे इन विचारों को प्रयोग करके उनकी सिद्धता अथवा असिद्धता का निर्णय कर लेंगे।”

“मिलों के संबंध में मेरे विचारों में इतना परिवर्तन हुआ है कि हिंदुस्तान की आज की हालत में मैनचेस्टर के कपड़े के बजाय हिंदुस्तान की मिलों को प्रोत्साहन देकर भी अपनी जरूरत का कपड़ा हमें अपने देश में ही पैदा कर लेना चाहिए।”

[सन् १९२१]

हिंद स्वराज’ के अंग्रेजी अनुवाद की प्रस्तावना लिखते हुए गांधीजी ने इस पुस्तक का एक ग्राम्य शब्द सुधारने की इच्छा बताई थी—

“इस समय इस पुस्तक को इसी रूप में प्रकाशित करना मैं आवश्यक समझता हूँ। परंतु यदि इसमें मुझे कुछ भी सुधार करना हो, तो मैं एक शब्द सुधारना चाहूँगा। एक अंग्रेज महिला मित्र को मैंने वह शब्द बदलने का वचन दिया है। पार्लियामेंट को मैंने ‘वेश्या’ कहा है। यह शब्द उन बहन को पसंद नहीं है। उनके कोमल हृदय को इस शब्द के ग्राम्य भाव से दुःख पहुँचा है।”

[सन् १९२१]

परिशिष्ट—२

कुछ प्रमाणभूत ग्रंथ

'हिंद स्वराज' के अध्ययन को आगे बढ़ाने के लिए नीचे की पुस्तकें पढ़ना उपयोगी होगा—

1. The Kingdom of God is Within You —*Tolstoy*
2. What is Art? —*Tolstoy*
3. The Slavery of Our Times —*Tolstoy*
4. The First Step —*Tolstoy*
5. How Shall We Escape? —*Tolstoy*
6. Letter to a Hindoo —*Tolstoy*
7. The White Slaves of England —*Sherard*
8. Civilization, Its Cause and Cure —*Carpenter*
9. The Fallacy of Speed — *Taylor*
10. A New Crusade —*Blount*
11. One the Duty of Civil Disobedience —*Thoreau*
12. Life Without Principle —*Thoreau*
13. Unto This Last —*Ruskin*
14. A Joy for Ever —*Ruskin*
15. Duties of Man —*Mazzini*
16. Defence and Death of Socrates —*From Plato*
17. Paradoxes of Civilization —*Max Nordau*
18. Poverty and Un–British Rule in India —*Naoroji*
19. Economic History of India —*Dutt*
20. Village Communities —*Maine*

Endnote

नई आवृत्ति की प्रस्तावना

[1] लगातार

[2] खिलना

[3] नंबर

[4] तरकीब

[5] उसूलों

[6] सियासी

[7] मक़सद

[8] ज़रिया

[9] महदूद

[10] मजमुआ

[11] अहमियत

[12] हद

[13] अमल

[14] बिलवजह

[15] बातचीत

[16] खरका

[17] मक़सद

[18] दुनियावी

[19] ख़ास

[20] ईमानदारी से

[21] उसूल

[22] कत्ल

[23] ख़राबियाँ

[24] हमराय

[25] खुद पर काबू रखने वाले

[26] शख्सियत

[27] अपना

[28] पसोपेश, दुविधा

[29] अक़ीदा

[30] अहम

[31] मसाला, पहेली

[32] साफ

[33] पाक, गुस्सा

[34] कफ़्फ़ारा

[35] ईमानदारी

[36] ख़सूसन, बेशक

उपोद्घात

[1] आज की

[2] आम

[3] सबसे अच्छा

संदेश

* अँग्रेज़ी मासिक 'आर्यन पाथ' के सितंबर, १९३७ मे प्रगट हुए 'हिंद स्वराज अंक' के लिए भेजा हुआ संदेश।

[1] ताईद

[2] एडिशन

[3] एनार्किस्ट

'हिंद स्वराज' के बारे में

[1] बहादुरी

[2] तमद्दुन

[3] अपना बचाव

[4] तरफ

[5] आम

[6] कायमी

[7] प्रोग्राम

[8] अमली

[9] तहरीक

[10] सवाल

प्रस्तावना

[1] मसला

[2] बाब

[3] ताईद

कांग्रेस और उसके कर्ता–धर्ता

[1] औज़ार, जरिया

[2] अदब से

[3] नज़र

[4] अक्लमंदी

[5] उस्ताद

[6] इज़्ज़त

[7] बेअदबी

[8] बेइज़्ज़ती, नफरत

[9] पुख्ता

[10] तालीम

[11] बेअदबी से

[12] खंब

[13] इन्साफ

[14] नफरत

[15] अहम

[16] कृतघ्न

बंग–भंग

1 जाग

2 मुखालिफत

3 तहरीक

4 नतीजे

5 चिन्ह

अशांति और असंतोष

1 बेचैन

2 सुध

3 इमकान

4 निशानियाँ

स्वराज क्या है?

1 सही का गलत अर्थ

2 दस्तूर

3 सूरत

4 मिजाज़

5 समृद्धि, मालामाली

इंग्लैंड की हालत

1 वैश्या

[2] भेद

[3] सिफत

[4] काबू

[5] तालीमयाफ्ता

[6] खुदगर्ज़

[7] दाल, पार्टी

[8] इस्तुना के तीर पर

[9] बेहतर हालत

[10] दीनदार

[11] तफ़्सीर

[12] दुर्दशा

[13] हुज–उल–वतन

[14] बैर

[15] सिफारिश

[16] इलक़ाब

[17] बेईमान

[18] ईमानदार

सभ्यता का दर्शन

[1] तहज़ीब

[2] पुरअरमानी

[3] बहादुरी, बड़ा काम

[4] शिखर

[5] हिस्सा

[6] यंत्र

[7] मज़ा, आनंद

[8] खसूसन

[9] तजुरबा

[10] तनहाई

[11] तहरीक

[12] कसूर

[13] बहुत अच्छे

हिंदुस्तान कैसे गया?

[1] पसोपेश, दुविधा

[2] तवारीख

[3] तलव, कुटेव

[4] बदहज़मी

[5] बात

[6] होशियार

[7] रखवाली

हिंदुस्तान की दशा–1

[1] कंगाल

[2] तहज़ीब

[3] अलग

[4] पुरजोश

[5] सुस्त

[6] दीनी

[7] जोश

[8] ढोंगी

[9] तोहमत

[10] ज़ुल्म

[11] दाग

[12] निडर

[13] निडरता

[14] आगाह

हिंदुस्तान की दशा–2

[1] कंगाल

[2] गैबी

[3] फैलानेवाले

[4] सुभीता

[5] नीचता

[6] पाक

[7] नापाक

8 दूरंदेश

9 निश्चित की

10 बेमेल

हिंदुस्तान की दशा–3

1 तरकीबें

2 बेहद

3 बहस

4 बैल को

5 बहादुरी

6 दिखावा

7 आज़माइश

8 मंज़ूर

9 नएतबार

हिंदुस्तान की दशा–4

1 सिफत

2 जमात

3 बेतरफदार

4 दिखावा

5 फ़रिश्ते

6 राजवंशी जागीरदार

[7] बड़ी

हिंदुस्तान की दशा–5

[1] बहुत हल्का

[2] बे – नन्स – परस्त

[3] बेदीन

[4] स्वच्छंद

[5] नतीजा

[6] जिसमें कोई दम न हो

[7] कमज़ोर

[8] बे – अक़्ल

सच्ची सभ्यता कौन सी?

[1] यंत्रकाम

[2] तहज़ीब

[3] अभिमान

[4] सिफत

[5] नुक्स

[6] तजुरबा

[7] बरताव

[8] तशरीह

[9] भावनाएँ, जज़्बे

[10] ख्वाहिश

[11] तालीम

[12] ठगों

[13] बेसवाओं

[14] पनाहगीर

[15] मक़सद

[16] शैतानी

* एक पुराण रिवाज, जिसके अनुसार बिना संतानवाली स्त्री पति के रोगी, नपुंसक या मृत होने की हालत में अपने देवर या पति के किसी और संबंधी से संतान पैदा करा सकती थी।

[17] देवदासियाँ

[18] क़त्ल

[19] निशानी

[20] बयान

[21] खुदा को नहीं माननेवाली

हिंदुस्तान कैसे आजाद हो?

[1] आज़ाद

[2] बड़ाई

[3] फंदे में

[4] तशरीह

[5] ख़ास या अहम

[6] इतिहास

[7] जोश

इटली और हिंदुस्तान

[1] मिसाल

[2] लड़वैया

[3] अलग राय

[4] षड्यंत्र

[5] आज़ाद

[6] हुब्बेवतन

[7] भला

[8] दहशत , त्रास

[9] शैतानी

[10] पंजाबी युवक मदनलाल धींगरा ने जुलाई, १९०९ में लंदन में कर्नल सर कर्ज़न वाइली को गोली का निशाना बनाया था। उसे फाँसी की सजा मिली थी।

गोला–बारूद

[1] तजुरबा

[2] जरिया

[3] फ़र्ज़

[4] दीनदार

[5] फिकरा

[6] नतीजे

[7] नतीजा

[8] आजिज़ी

[9] फैसला

[10] नाहिम्मत, कायर

[11] नासमझ

[12] नुक्सान

[13] हालत

[14] हाकिम

[15] लाफ़ानी

[16] तरह

[17] बड़ा काम

सत्याग्रह–आत्मबल

[1] सबूत

* गाँधी जी ने देहमूल पाठ लिया है – अनुवादक

[2] दुःख

[3] गैर कुदरती

[4] मक़सद

[5] गैर इन्साफवाला

[6] ला खुदाई

[7] जरिया

[8] खतरनाक

[9] दंग

[10] निडर

[11] नफ़सानी ख्वाहिश

[12] दुविधा

[13] सिफ़तों से

शिक्षा

[1] तहज़ीब

[2] बहुत बड़े

[3] औज़ार

[4] मुकाबले में

[5] इन्साफ को परखनेवाली

[6] फ़र्ज़

[7] ताईद

[8] मनचाहा देने वाली गाय

[9] गहना

[10] उद्धार–सँवार, फिर से जिलाने की कोशिश

[11] ज़ाहिर

[12] बद्दुआ

[13] ढोंग

[14] ममता, द्वेष

[15] मादरी ज़बान

[16] खुदगर्ज़

[17] तरक्की

[18] गिरावट

मशीनें

[1] ज़िक्र

[2] भारी ख़ुशी

[3] लाचार

[4] शहबत

[5] बातें

[6] ज़हरीले

* अनारम्भो हि कार्याणाम् प्रथम बुद्धिलक्षणम्।
आरब्धस्यान्तगमनम् द्वितीयं बुद्धिलक्षणम् ।।

[7] ईमानदार

[8] ज़रिए

[9] आसान, सीधा

छुटकारा

[1] कमी

[2] बंदोबस्त

[3] डाह, ईर्ष्या, बैर

[*] Be a Roman in Rome – रोम में रोमन बनकर रहो

[4] गरूर, घमंड

[5] उलटी

[6] जजी

[7] अफ़सोस, पछतावा

[8] कफ़्फ़ारा

[9] मातम

[10] ज़ायकेदार

[11] कोशिश

[12] फ़र्ज़,

[13] भेंट, नज़र किया हुआ

Published by

Prabhat Prakashan

4/19 Asaf Ali Road, New Delhi–2

ISBN 978-93-5186-100-3

Hind Swaraj

by Mahatma Gandhi

Edition

First, 2010